प्रकाशक—
ओमप्रकाश बैरी
हिन्दी-प्रचारक-पुस्तकालय,
पो० बाक्स न० ७०
ज्ञानवापी, वाराणसी

मूल्य दो रुपया पचास नये पैसे मात्र
प्रथम बार ११००
नवम्बर १९५७

मुद्रक—
याज्ञवल्क्य
ममता प्रेस, कबीरचौरा,
वाराणसी—१

"प्रेम-समुद्र अथाह है, बूड़े मिलै न अन्त।
तेहि समुद्र में हौं परा, तीर न मिलत तुरन्त ॥"

—'नूर मुहम्मद'

वक्तव्य

समाज और साहित्य का सम्बन्ध घनिष्ठ और अविच्छिन्न है। दोनों के विकास का क्रम, अन्योन्याश्रित तथा प्रतिक्रियात्मक होता है। बहुत अंशों में, समाज के विकास के करण और कारण साहित्य के विकास के भी करण और कारण होते हैं। किसी समाज के विकास के सघटक-तत्त्व उसके अन्तर्गत रहने वाली विभिन्न जातियों की संस्कृति, उनके आचार-विचार एवं सभ्यता के पारस्परिक घात-प्रतिघात से उत्पन्न, एक रस विचार-धारा होती है और उस समाज द्वारा प्रस्तुत साहित्य भी उसी संघटक-तत्व पर आश्रित रहता है। जिस समाज में, अनेक जातियों की संस्कृति के ओत-प्रोत हो जाने पर साहित्य की सर्जना होती है, उसका साहित्य बहुमुखी और व्यापक होता है। यदि, इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए, हम हिन्दी-साहित्य के विकास के इतिहास का अध्ययन करें, तो यह स्पष्ट रूपेण सत्य प्रमाणित होगा कि हिन्दी-साहित्य का विकास हिन्दी-भाषा-भाषी-प्रान्तों की विभिन्न जातियों के आचार-विचार एवं उनकी संस्कृति पर आश्रित है और इसी कारण उसमें बहुमुखी रूप के दर्शन सुलभ हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में इस बात का आलोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है कि मुसलमान कवियों ने हिन्दी-साहित्य के 'प्रेमकाव्य' के विकास पोषण तथा स्थायित्व में कहां तक योग दिया और उनके कारण भारत की साहित्य-परम्परा में कहा-कहा और क्या-क्या नूतनता समाविष्ट हुई है? मुसलमान लेखकों द्वारा खड़ी बोली के विकास में भाषागत ही सफलता मानी जा सकती है, क्योंकि यहा पहुंचकर उनकी साहित्य-परम्परा विच्छिन्न होने लगी थी। किन्तु, हिन्दी की अन्य उपभाषाओं (ब्रज, अवधी आदि) के साहित्य की संवर्धना मुसलमानों द्वारा, भाषा और साहित्य दोनों की दृष्टि से हुई थी तब भाषा और साहित्य में पार्थक्य का पथ नहीं बन पाया था।

प्रस्तुत विषय 'प्रेमकाव्य' तक ही परिमित है, अर्थात् हिन्दी-साहित्य के 'प्रेमकाव्य' की मुसलमान कवियों की क्या देन है? लेखक का अभीष्ट इसी का प्रतिपादन है। 'मुसलमान' और 'प्रेमकाव्य' दो पर ध्यान रखकर विषय का अनुशीलन किया गया है। 'प्रेम' निर्विषेश रूप में यहा न होकर सविशेष है। उसके निर्विशेष रूप की व्याख्या तो स्वतन्त्र विषय ही है, उसकी व्याप्ति का पता कबीर की उक्ति देती है—'ढाई अच्छर प्रेम का पढे सो पंडित होय।'

प्रतिपाद्य की सीमा का निर्धारण कर लेने पर प्रतिपादन शैली के सम्बन्ध में भी कुछ कह देना अप्रासंगिक न होगा। 'प्रेम' के विविध स्वरूपों का जो निरूपण देश-विदेश के विविध विद्वानों द्वारा किया गया है, उससे विरत होकर हिन्दी के प्रेमकाव्यों में गृहीत 'प्रेम' के अलौकिक और लौकिक स्वरूप ही दृष्टि-पथ में रखे गए हैं। यहा यह कह देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि मुसलमानों-कवियों ने 'इश्क़' (प्रेम) के दो ही रूप-हक़ीक़ी (अलौकिक) और मजाज़ी (लौकिक) माने हैं। मुसलमानों की देन का वैशिष्ट्य समझाने के लिए, बात कुछ पहले से उठानी पड़ी है, जिससे मुसलमानों और उनके हिन्दी सम्पर्क का ऐतिहास्य स्पष्ट हो जाय और हिन्दी साहित्य में उनके पूर्व के प्रेमकाव्य की परम्परा का ठीक-ठीक पता चल जाय। अतः आरम्भिक दो अध्यायों को पूर्वेतिहास या पूर्वपीठिका समझाना चाहिए। तत्पश्चात् चार अध्याय प्रेम से सम्बद्ध हैं, क्योंकि मुसलमान-कवियों में प्रधान सूफी कवि हैं, और सूफीवाद को आध्यात्मिक 'प्रेमवाद' कह सकते हैं। इन सूफीयों का प्रभाव ज्ञानमार्गियों पर भी पड़ा है। सातवें अध्याय में भक्तिगत प्रेमकाव्य का वर्णन किया गया है। भक्ति सपृक्त प्रेमकाव्य भी पारलौकिक प्रेम ही है, किन्तु अलौकिक प्रेम की अपेक्षा उसमें लौकिक पक्ष प्रधान है-निर्गुण के स्थान पर उसमें सगुण की प्रमुखता है। यही कारण है कि यहा उस आन्योपदेशिक (Allegorical) सविधान की आवश्कता नहीं थी, जो सूफियो के शुद्ध प्रेमकाव्यों में मिलती है। अब रही शुद्ध लौकिक प्रेम की बात। अन्तिम अध्याय में इसी की विवेचना है। इस शैली के ग्रहण से 'प्रेम' के काव्यगत विविध पक्षों का स्वरूप भी स्पष्ट होगा और उसके ग्रहण की शृखला का भी परम्परित ढग व्यक्त हो गया होगा, ऐसी आशा है।

—लेखक

—*—

तालिका

१—आभार

२—वक्तव्य — क

३—हिन्दी और मुसलमान— — १

मुसलमानों का आगमन, हिन्दी से सम्पर्क

४—प्रेमकाव्य-रचना की परम्परा— — ८

विकास, सूफी प्रेमकाव्य, प्रेमकाव्यों का कथानक और शैली, विशेषताएं

५—सूफीवाद— — १८

आरम्भ, सूफी शब्द की व्युत्पत्ति, सूफी की परिभाषा, सिद्धान्त, उपसंहार

६—सूफी-कवियों का प्रेम-निरूपण— — २८

प्रेम क्या है? सूफियों का मूल सिद्धान्त 'प्रेम', सूफी प्रेम की प्राचीनता, वियोग पक्ष, संयोग पक्ष, सूफी रहस्यवाद, उपसंहार

७—सूफी कवि— — ४६

कुतुबन, मझन, मालिक मुहम्मद जायसी, उसमान, शेख नबी, कासिम शाह, नूर मुहम्मद, निसार, शेख रहीम, जान कवि, ख्वाजा अहमद, नासीर

८—ज्ञानमार्गी संत-कवि— — ६०

संत परम्परा, सिद्धान्त, रहस्यवाद, कबीर, रज्जब जी, यारी साहब, दरिया साहब, दरिया साहब द्वय, शेख फरीद, दीन दरवेश, शेख फरीद, पेमी कवि, बुल्ले-शाह, नज़ीर, अब्दुल समद, बनहन कवि, अज्ञात कवि

९—कृष्ण-भक्त-कवि— — ७६

कृष्ण भावना का अविर्भाव, हिन्दी में कृष्ण-काव्य का आरंभ रसखान, ताज कवयित्री, नजीर

१०—स्थूल-प्रेम वर्णनकार— — ८६

रहीम, आलम, शेख रंगरेजिन, मुबारक, अहमद ताहिर, प्रीतम, रसलीन, अहमदुल्ला, आजम हफी-जुल्ला खां, करीम

११—उपसंहार— — ९८

१२—सहायक ग्रंथ-सूची — १००

— ❀ —

हिन्दी और मुसलमान

संसार के सभी देशों में विभिन्न जातियों के पारस्परिक सघर्ष के उदाहरण मिलते हैं। यद्यपि भारतवर्ष की विशिष्ट प्राकृतिक अवस्थिति वाह्य आक्रमणों से सुरक्षा का कारण मानी जाती है, तथापि वास्तविकता का साक्ष्य उसके विपरीत है। भारत सदा आक्रान्त होता रहा और विदेशी जातियाँ यहाँ निरन्तर आती रहीं। फलत· भारतीय वाङ्मय एवं सस्कृति पर भी ससर्ग जन्य·विदेशी प्रभाव पड़ता रहा। देश-भेद या जाति-भेद से आदर्श-भेद भी होता है। यद्यपि एक जाति का दूसरी जाति से मेल सामाजिक जीवन मे जटिलता अवश्य लाता है, तथापि उसी संकुलता और सघर्ष से सभ्यता का विकास भी होता आया है। सभ्यता के विकास के लिये सापेक्षकता की आवश्यकता है। प्रारम्भ में तो दो भिन्न जातियाँ अपनी सास्कृतिक एव सामाजिक रीतियों के कारण एक दूसरे से पृथक् प्रतीत होती हैं, उनके आचार-विचार एक दूसरे से मिलते ही नहीं या बहुत कम मिलते हैं। यह सामयिक भिन्नता कालान्तर में उन जातियों की अभिन्नता तब तक नहीं रोक सकती, जबतक सबके अभ्यन्तर में परमसत्ता का आभास देने वाले और उसकी नित्यता की घोषणा करने वाले महात्माओं की ध्वनि मन्द नहीं पड़ जाती और देश-काल परिच्छिन्न स्वार्थ की कृत्रिम वासना एवं राजनीतिक दर्प उत्पन्न नहीं कर देती। क्योकि साथ-साथ रहकर दोनों जातियाँ अनुभव करने लगती हैं कि जब साथ रहना है और जीवन की जटिलताएँ सबके लिए समान हैं तो अभिन्नता का मार्ग खोजना ही पड़ेगा। यही सामाजिक जीवन के विकास का इष्ट-क्रम भी है। यों तो विश्व में सर्वत्र बाहर-बाहर से भिन्नता का ही साम्राज्य है, किन्तु इसी भिन्नता के बीच एकता-स्थापन जीवन का रहस्य है—(Unity in diversity) समाज प्रगतिशील होता है, सस्कृति एव साहित्य का पथ यही है। जीवनगत सामाजिक सत्य का अन्वेषण यही है।

भारतवर्ष के इतिहास में भी अनेक जातियों का पारस्परिक सम्मिलन महत्वपूर्ण घटना है। भारत में पायी जाने वाली यवनानी, पारसीक आदि शिल्पकला की शैलियाँ उसी सम्मिलन के स्मृति-रूप में वर्तमान हैं। आज से ढाई सहस्र वर्ष पूर्व, भारत पर सिकन्दर द्वारा किये गये सर्व प्रथम आक्रमण का प्रभाव क्या भारतीय सस्कृति पर नहीं पड़ा? क्या यवनान- भारत से प्रभावित नहीं हुआ?

इतिहास स्वत इस पारस्परिक प्रभाव का साक्षी है। हाँ, यह बात दूसरी है कि भिन्न-भिन्न देशों में प्रभाव की यह मात्रा न्यूनाधिक है। उदाहरणस्वरूप योरुप में जाति-सम्मिलन के समय इतनी विषमता नहीं पायी गयी, क्योंकि अधिकाश की उत्पत्ति एक ही मूल से हुई थी और उनकी सस्कृति का विकास भी पृथक् रूप से नये आदर्शों पर नहीं हुआ था। इसके विपरीत भारत में आने वाली आदिम जातियों में परस्पर विषमता थी, फिर भी वह विषमता पूर्ण-एकता में परिणत हो गई। फलत उनकी आज कोई पृथक् सत्ता नहीं रह गई है। वे सभी पूर्व भारतीयों से मिल गई, क्योंकि उनकी पृथक् सस्कृति भी हमारी सस्कृति से बहुत कुछ मिलती जुलती थी। इसके विपरीत मुसल्मानों का सम्मिलन, बहुत कुछ इसी कारण से न हो सका कि उनकी तथा भारतीय सस्कृति में आकाश-पाताल का अन्तर था और फलस्वरूप आज भी हम अपने देश में मुसल्मानों को पृथक् जाति के रूप में तो देखते ही हैं, वे पृथक् सत्ता के रूप में भी अपने को पृथक् कर चुके हैं।

मुसलमानों का आगमन

विक्रम की आठवीं शती का अन्तिम चरण भारतवर्ष के इतिहास में सब से अशुभ समय था, जिसने देश को दासता की बेड़ी में जकड़ दिया था। इसके पूर्व स० ६९४ विक्रमी में मुसलमान लुटेरों ने बम्बई के आस-पास लूट-पाट भर की थी। भारत में मुसललानों का जम कर आना एक प्रकार से आठवीं शती के अन्तिम चरण से ही मानना उचित होगा। इनका देश पर दृढ आधिपत्य तो सं० १२५० विक्रमी के पहले नहीं हुआ था। मुसल्मानों का आधिपत्य स्थापित होने के पूर्व कितने ही मुसल्मान साधकों और फक़ीरों का भारत में आगमन हो चुका था। यह समय मुसलमानों के अभ्युदय का था। बग़दाद विद्या का केन्द्र हो गया था। कितने ही भारतीय विद्वान् खलीफा के दरबार तक पहुँच चुके थे। इसी से अरबी भाषा में कितने ही सस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद सम्भव हो सका[१]। सर्व प्रथम मुसलमानों का भारत पर अभियान साम्राज्य-स्थापना की वृत्ति से प्रेरित न होकर धर्म-प्रचार की भावना से उद्बुद्ध था। संभवत इसी धर्म-प्रचार की लिप्सा ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच द्वेष की वह अग्नि प्रज्वलित कर दी, जिसे अनेक प्रयत्न करने पर भी शान्त करना सम्भव न हो सका। इस विरोध को दूर करने का स्वदेश की शुभ कामना से प्रेरित

१—अरब और भारत का सम्बन्ध।

होकर सबसे अधिक और स्तुत्य प्रयास यदि किसी व्यक्ति ने किया तो महात्मा कबीर दास ने। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों को फटकार बतायी। यद्यपि इनको सफलता नहीं प्राप्त हुई, तथापि प्रयास, पूर्ण रूप से व्यर्थ भी नहीं गया। जो थोड़ी सी विफलता हुई उसके मूल में कबीर दास की विदेशी एकेश्वरवाद (खुदावाद) की भावना थी, जिसका ग्रहण दार्शनिक क्षेत्र में अग्रसर भारतीयों के लिये सम्भव न था। पर जनता ने कबीर की फटकार को कोरी फटकार नहीं समझा, प्रत्युत इस पर विचार भी किया और उसमें पाया आन्तरिक यथार्थ-तथ्य। वह उनके प्रभाव से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। अन्ततोगत्वा हिन्दू-मुसलमान पारस्परिक भेद-भाव भूल कर एक-दूसरे के देवी-देवता तक की पूजा करने लगे।

हिन्दी से सम्पर्क

धीरे धीरे भारतवर्ष में मुसलमानी सत्ता स्थापित हो गई। शासक के रूप में मुसलमान जो अरबी और फारसी भाषा लेकर यहाँ आए थे, वह शासित वर्ग के लिये पूर्ण रूप से प्रतिकूल थी। शासक और शासित के बीच सुचारु रूप से विचार-विनिमय तभी सम्भव होता है, जब पारस्परिक भाषा में भिन्नता होने पर शासक-वर्ग शासित की भाषा से परिचित हो जाय। किसी विजयिनी-जाति का विजित-जाति की भाषा से परिचित होना आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना प्रारम्भिक अवस्था में शासन कार्य का संचालन करना कठिन ही नहीं, असम्भव है, भले ही कालान्तर में विजेता की भाषा का अधिपत्य हो जाय और वही राजकीय भाषा के पद पर आसीन हो। अस्तु, अपने ऐश्वर्य एव वीरत्व के मद में चूर मुसलमान शासक हिसाब-किताब जैसे कार्यों को तुच्छ एवं प्रतिष्ठा-विरुद्ध समझते थे। दूसरे इनके साथ पर्याप्त संख्या में इतने शिक्षित मनुष्य भी नहीं थे, जिनकी नियुक्ति प्रत्येक पद पर की जा सकती, जिसका सम्बन्ध राज्य-व्यवस्था से था। अत. उन्होंने विजित देश के राजकीय कार्यालयों और कर्मचारियों को पूर्ववत् ही कार्य करने दिया। मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध-विजय के पश्चात् वहा के भूतपूर्व मत्री-ही को राज्यभार सौंप कर, सहायता के लिये ब्राह्मण कर्मचारियों की नियुक्ति की। कार्यालय का कार्य भी देशी भाषा (पुरानी हिन्दी,) ही में चलता रहा। मुहमद गजनवी ने भी पंजाब-विजय के पश्चात् इसी सिद्धान्त का अनुसरण किया। इतना ही नहीं इस परिस्थिति ने सिकन्दर लोदी जैसे कट्टर मुसलमान शासक को भी शासन-कार्य देशी भाषा में चलाने को बाध्य किया—उस सिकन्दर लोदी को जो हिन्दुओं को फारसी पढने के लिये बाध्य करता था।

इस प्रकार यदि 'हिन्दवी' (हिन्दी) को मुसलमानों ने स्वेच्छापूर्वक नहीं, तो परिस्थितिवश बाध्य होकर अवश्य अपनाया। राजा टोडरमल की बेतुकी सूझ से उत्तर-भारत के राज्य कार्यालयों से 'हिन्दवी' भले ही निर्वासित हुई हो, किन्तु अकबर का हृदय, ब्रज की भाषा (हिंदी) की माधुरी में पग गया। वह इसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कविता-कानन में धँसा—एक रसिक की भाँति। अकबर की कविताएँ[1] केवल तुकबन्दी न होकर, उत्प्रेक्षा, एव उपमाओं से युक्त हैं। अनुप्रास की छटा तो देखने ही योग्य होती है। अर्थात् रचना मन लगाकर की गई है। विचार पूर्वक देखकर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी को वास्तविक रूप सम्राट् अकबर के ही समय में प्राप्त हो गया था। अकबर का हिन्दी के प्रति अनुराग इतना तीव्र था कि उसने अपने पौत्र खुसरो को छ वर्ष की ही अवस्था में सर्व प्रथम हिन्दी की शिक्षा दिलाई थी[2]। अकबर को इतने से ही सन्तोष न हुआ, उसने तो राज्य के प्रबन्ध और शासन-विभाग तक में हिन्दी का प्रचार किया। अकबर ने तो सिक्कों, तोपों, अस्त्र-शस्त्र आदि के पुराने (विदेशी) नाम बदल कर नये हिन्दी के (देशी) नाम रख दिये थे। उदाहरण के लिए कुछ नाम यहाँ दिए जाते हैं—

सोने के सिक्कों के नाम—रहस्य, विंशति, रवि, पाण्डव आदि।

चाँदी के सिक्कों के नाम—रुपया (रौप्यक), चरण (चवन्नी) आदि।

तोपों के नाम—गजनाल, हयनाल, नरनाल आदि। इसी प्रकार बन्दूकों, तलवारों आदि के नाम क्रमश सग्राम, जलधर आदि मिलते हैं[3]।

यह तो हुई राजनीतिक परिस्थितिवश हिन्दी के ग्रहण की बात। किन्तु भारतवर्ष में मुसलमानों की राजनीतिक सुव्यवस्था हो जाने पर भी, हिन्दू-समाज को सुख और शान्ति न मिली, तो इसके लिए प्रयत्न होने लगे। हिन्दुओं ने

१—शाह अकब्बर एक समै चले, कान्ह बिनोद बिलोकन बालहिं।
आहटते अबला निरख्यो, चकि चौंकि, चली कर आतुर चालहिं।
त्यों बलि बेनी सुधारि धरीसु, भई छबि यों ललना अरु लालहिं।
चपक चारु कमान चढावत, काम ज्यों हाथ लिये अहि बालहि॥

२—'७ आजर सन् ३८ जलूसी (अगहन सुदी ६ सम्वत् १६५० वि०) को सुल्तान खुसरो हिन्दी विद्या सीखने को बैठा। भूदत्त ब्राह्मण जो भट्टाचार्य के नाम से सर्वसाधारण में प्रसिद्ध है और अनेक विद्याओं में सुपण्डित है, उसको पढाने के लिये नियत हुआ।'—अकबर नामा।

३—आइने अकबरी।

मुसलमानों को राजकीय-सत्ता के स्थापनार्थ सहयोग दिया। प्रतिद्वंदी एवं विरोधी होने पर भी, दोनों के बीच समानता स्थापित होने लगी। दोनों ही एक दूसरे के भाव-ग्रहण करने को प्रयत्नशील हुए। इसका पूरा प्रभाव अकबर के राजत्व काल में प्रकट रूप में सामने आया। अकबर स्वयं साहित्य और कला का प्रेमी था और उनकी उन्नति के लिये हिन्दू-मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं रखता था। उसके दरबार के रत्नों में अब्दुल रहीम खानखाना, जैसा हिन्दी का कवि भी था, जिसके नीति विषयक दोहे आज भी जनता में यथेष्ट मात्रा में प्रचलित हैं। अकबर का अनुराग हिन्दी और हिन्दुओं के प्रति ही नहीं मन्दिरों के प्रति भी था। अकबर के प्रधान-मन्त्री अबुलफ़ज़ल ने एक हिन्दू-मन्दिर के लिये इस आशय का लेख खुदवाया था—'हे ईश्वर!' मनुष्य सभी देव-मन्दिरों में तुम्हीं को खोजते हैं।' सामाजिक एकता के लिये राज्य की ओर से यह बड़ा प्रयास था। अबुलफजल का यह उद्गार मध्ययुग का नव-सन्देश कहा जा सकता है। स्वच्छन्द रूप से सूर और तुल्सी ऐसी ही भावना का प्रसार कर रहे थे। जनता की आकांक्षा भक्तकवियों की वाणी के रूप में व्यक्त हुई और राजन्य वर्ग के लोग भी उससे अछूते न रह सके, मुसलमान अपनी कट्टरता भूलने लगे। मानवता की सामान्य भाव-भूमि पर उन्हें आना पड़ा। मुसलमान कवियों का हिन्दी कविता-कानन को सींचने का हेतु, यही है। पारस्परिक विरोध मिटाने के लिए वैष्णव धर्म के आचार्यों ने भी कम चेष्टा नहीं की। 'वैष्णवों की वार्ताओं में कई मुसलमान भक्तों की कथा मिल्ती है। एकता की दृष्टि से वैष्णवों की उदार भावना ने ही रसखान जैसे मुसलमान को कृष्ण-भक्त स्वीकार किया। ताज कवयित्री तो मुसलमान से 'हिन्दुवानी' हो जाने को तैयार बैठी हैं—

'नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै,
ताणे नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं।'

'खुदा' और 'परमात्मा' की अभिन्नता घोषित हुई। यह उद्योग साहित्य द्वारा हुआ। साहित्य ने 'साहित्य' सामने किया। भाषा के क्षेत्र में एकता बहुत पहले से स्थापित हो चुकी थी। तेरहवीं शती से अमीर खुसरो ने मुकुरियो की रचना कर साहित्य द्वारा ऐक्य-स्थापना का प्रमाण प्रस्तुत किया था। हिन्दी में कागज-पत्र, शादी-व्याह, रीति-रस्म, धन-दौलत, हर-एक आदि शब्द इसी भाषा गत एकता के ही कारण बने। 'एकता' का यह आन्दोलन मलिक मुहम्मद जायसी, अब्दुल रहीम खानखाना, रसखान, प्रभृति मुसलमान कवियों और भक्तों द्वारा चलता रहा।

इस आन्दोलन को निरन्तर प्रोत्साहन मिलता गया और इसे इतनी सफलता प्राप्त हुई कि कट्टर कहा जाने वाला औरंगजेब जैसा मुसलमान शासक भी हिन्दी में रचना कर गया[१]। यह परिस्थिति की विवशता ही तो थी। यही कारण है कि मुसलमानी राजत्व-काल में हिन्दी के कवियों का सम्मान बढ़ा और हिन्दी साहित्य में प्रचुर परिमाण में रचनाएँ हुई। रीतिकाल के लक्षण और लक्ष्य ग्रन्थों का प्रभूत वाग्मय इसी एकता का फल है, जिसमें हिन्दू और मुसलमानों ने समान रूप से योग दिया। मुसलमान शासक हिन्दी-प्रियता की उपेक्षा कभी न कर सके। मुहम्मद गज़नवी ने कालिंजर के राजा नन्दा द्वारा प्रशंसा रूप में भेजे गये हिन्दी के एक दोहे से प्रभावित होकर विजित कालिंजर का किला तो लौटा ही दिया, इसके अतिरिक्त उसे अन्य चौदह किलोंका भी अधिकारी बना दिया[२]। अब्दुल रहीम ने तो गग भाट को एक छप्पय[३] पर लाखों रुपये दे डाले थे। संगीत-कला विरोधी होते हुए भी औरंगजेब ने अब्दुल जलील नामक हिन्दी के कवि को उच्चपद पर आसीन कर रखा था। इन्होंने कुछ फुटकर छन्दों की रचना की है, प्रमुख रूप से बरवै में। उदाहरण के लिए देखिए—

> अधम उधारन नमवा सुनि कर तोर।
> अधम काम की बतिया गहि मन मोर॥ आदि

१—प्यारन को बिछुआ सहज नहीं है।
भाई तुम्हारे दरस बिन, मानो मीन बिन नीर॥

—राग कल्पद्रुम

२—देखिये—हिन्दी के मुसलमान कवि पृ० ३०।

३—वह छप्पय यह है—

> चकित भवर रहि गयो, गवन नहि करत कमल बन।
> अहि फन मनि नहि लेत तेज, नहि बसत पवन घन॥
> हंस मानसर तज्यो, चक्क चक्की न मिलै अति।
> बहु सुन्दरी पद्मिनी, पुरुष न चाहै न करै रति॥
> खल भणित शेष कवि गग, मनि रमित तेज रवि रथ खस्यो।
> खानान खान बैरम सुवन, जि दिन क्रोध करि तग कस्यो॥

इसप्रकार अनेक स्थलों पर हिन्दी कविता के लिए पुरस्कार दिये जाने का उल्लेख है। 'तुजुक जहागीरी, में सं० १६६५ वैशाखबदी ११ और ३० की तिथि में लिखा गया वृतान्त।

अस्तु, सम्मिलन की इस चिरन्तन सत्य की आधारशिला पर ऐक्य मूलक आध्यात्मिक आदर्श की भित्ति का निर्माण कर, भारत ने अपनी राष्ट्रीयता की स्थापना की। इस राष्ट्रीयता में हिन्दू और मुसलमानों का समन्वय हुआ—बिना अपने-अपने मूल आदर्शों का त्याग किये ही यह मिलन की वह भूकिका थी, जहाँ कृत्रिमता नाम की कोई वस्तु थी ही नहीं। यह राजनीति एवं समाज नीति से परे है। सत्य की सीमा के विस्तार से ही तो पारस्परिक विरोध की सीमा संकीर्ण हो जाती है। जहाँ समाज में आचार-विचार सम्बन्धी अनेक भेद-भाव थे, वहाँ दूसरी ओर मानव मात्र की एकता स्वीकार की जा रही थी। यदि एक ओर खान-पान का विरोध था, तो दूसरी ओर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना का प्रचार हो रहा था।

इस सामाजिकता से दूर, उधर विदेश-फारस से आये हुए मुसलमान साधकों और फकीरों, ने, जो भारतीय दर्शन (अद्वैतवाद) से प्रभावित हो चुके थे, हिन्दी में प्रेम आख्यानों की रचना प्रारम्भ कर दी थी। उन्होंने भारत में जनता के बीच प्रचलित कहानियों को कथा-वस्तु के रूप में ग्रहण किया। हिन्दी भाषा में अपने ग्रन्थ लिखे। भला! जिस हिन्दी ने अपनी मनोहरता के कारण कट्टर कहे जाने वाले मुसलमान शासकों तक को आकर्षित किया और हिन्दी में रचना करने के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा, उसे 'प्रेम की पीर' लेकर आने वाले ये सूफी फकीर क्यों ग्रहण न करते? इन फकीरों और सन्तों ने पारस्परिक भेद, भाव मिटाने का बहुत बड़ा प्रयास किया। कबीर की फटकार बताने वाली पद्धति से पारस्परिक भेदभाव को दूर होते न देख कर, हुसेन शाह के आश्रित कुतुबन मियाँ एक ऐसी कहानी लेकर अवतीर्ण हुए, जिसमें मनुष्यत्व का चित्रण था, और था—प्रेम-तत्व का सर्वसामान्य स्वरुप। प्रेम की भावना तब अधिक व्यापक हो उठी। प्रेम ही ऐसी पवित्र भूमि है, जहाँ पहुँचने पर जाति-पाँति का भेद पूर्ण-रूप से तिरोहित हो जाता है। साधना की उच्चतम भूमि भी तो 'प्रेम' ही है। प्रेम की महत्ता ने ही इन फकीर-कवियों के भीतर घर कर लिया। यह प्रेम लौकिकता से ऊपर उठकर अलौकिक जगत् की ओर बढा। इसी से विश्व-चक्र से सत्तावान् प्रत्येक पदार्थ को प्रेममय देखा। इसने विश्वात्मा को प्रेमस्वरूप घोषित किया—

> प्रेम हरी कौ रूप है, त्यों हरि प्रेम सरूप।
> एक होय द्वै यों लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥
>
> —रसखान।

———

प्रेमकाव्य रचना की परम्परा

विकास

हिन्दी में प्रेम काव्यों की रचना विदेशियों द्वारा आरम्भ की गयी हो, बात ऐसी नहीं है। इसका बीज ससार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में पाया जाता है। सुप्रसिद्ध 'उर्वशी और पुरुरवा' की कथा से सभी परिचित हैं। इस प्रकार प्रेम-कथाएँ आगे चल कर लौकिक सस्कृत में दो रूप में दिखायी पड़ती हैं। कुछ कथाओं का निर्माण कोरी कल्पना के आधार पर हुआ और कुछ कथाओं के नायकों का वृत्त इतिहास से लिया गया। नाटक एव महाकाव्यों में पौराणिक और ऐतिहासिक कथाएँ गृहीत हुई। इतना ही नहीं काल्पनिक कथाओं का ग्रहण गद्य शैली में भी किया गया। उदाहरण के लिए 'बाण' की 'कादम्बरी' और सुबन्धु की 'वासवदत्ता' प्रस्तुत है। दोनों की गणना प्रसिद्ध प्रेमाख्यानों में की जाती है। कालिदास ने विक्रमोर्वशी, अभिज्ञान शाकुन्तल, शूद्रक ने मृच्छकटिक और भवभूति ने मालती-माधव जैसे प्रेम नाट्यों का प्रणयन किया। सस्कृत में लिखे गये कई एक महाकाव्य और खडकाव्य उसी प्रेम काव्य की सीमा के भीतर आते हैं। धनपाल की तिलक मजरी, वादीप सिंह की गद्यचिन्तामणि आदि रचनाएँ, बाण की गद्य शैली के ही आधार पर की गयी। दण्डी-रचित अवन्ति सुन्दरी नामक कथा की एक खण्डित प्रति पायी जाती है। महाभाष्यकार पतजलि ने अपने भाष्य में भमरथी, सुमनोत्तर, वासवदत्ता आदि कई प्रेम काव्यों का उल्लेख किया है। इनके नाम के आधार पर इनके कल्पित होने की कल्पना की जा सकती है। यहाँ यह बात निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि हमारी प्रेम-काव्य-रचना की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। उपलब्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त न जाने कितने ग्रन्थ क्रूर काल द्वारा कवलित कर लिये गये होंगे। फिर भी, पाये जाने वाले ग्रन्थ अपनी परम्परा को बताने के लिए पर्याप्त से ही जान पड़ते हैं।

संस्कृत प्रेम काव्यों की यह परम्परा अपभ्रंश काल तक चलती रही। अपभ्रंश काल में—(जिसका समय सम्वत् १००० तक माना जाता है,) अपभ्रंश में प्रेमकाव्य लिखे जाने लगे। जैन ग्रन्थों में 'भविसयत्त कहा' नामक आख्यायिका पायी जाती है। सम्भवत और भी रचनाएँ इस काल में हुई होंगी, क्रमबद्ध इतिहास न होने से उनका पता नहीं चलता। अपभ्रंश काल आते-आते भारत भूमि में मुसलमानों का पदार्पण हो गया था। सूफी फकीरों का भी आगमन हो चुका था। जिस प्रकार भारत में प्रेमाख्यानों की रचनाएँ हो रही थीं, उसी के समान फारस में 'मसनवी' शैली में रचनाएँ होती रहीं, जिनमें सूफियों का रहस्यवाद मिला हुआ था। 'प्रेम की पुकार' करने वाले सूफी जब भारत आए तब उन्होंने भारतीय जनता के बीच प्रचलित कथाओं को अपना कर, अपना रंग चढा कर, चित्रित किया। इस प्रकार का जो रूप खड़ा किया गया, वह भारतीय परम्परा में आने वाले प्रेमकथा के स्वरूप से भिन्न था। यही नया रूप सूफी प्रेमकाव्यों का जन्मदाता कहा जा सकता है।

भारत में प्रेमकाव्यों की यह नयी धारा बहाने में, यदि राजनीतिक कारण उतना प्रबल नहीं था, तो यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इसके भीतर धार्मिकता की ही प्रधानता थी, साथ ही कुछ सामाजिकता की भी। यह बात निश्चित और प्रमाणित है कि मुसलमानों का भारत-प्रवेश सर्वप्रथम धार्मिक दृष्टि से ही हुआ था। भले ही कालान्तर में उसके रूप में परिवर्तन हो गया और राजनीतिक बन बैठा। धर्म-प्रचारक का कार्य शासक वर्ग स्वत. चाहे न भी करे किन्तु इस प्रचार में योग तो अवश्य ही देता है। कार्य का सम्पादन वस्तुत मुल्ला-मौलवी, पादड़ी आदि ही करते हैं। राज्य-आश्रय में धर्म किस प्रकार पल्लवित हुए, इतिहास साक्षी है। मुसलमान साधु-फकीरों ने जब देखा कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एक दूसरे के प्रतिद्वंदी हैं तथा धर्म का विस्तार करना है, तब चट एकता स्थापन के नाम पर भारतीय कथानक और तत्कालीन हिन्दी को अपना कर प्रेमकाव्यों की रचना की। ऐसी रचनाओं में सूफीवाद की स्पष्ट झलक दिखायी पड़ती है। सूफी मत का स्वरूप भारतीय अद्वैतवाद पर ही निर्मित होने के कारण ही भारत में ग्राह्य हो सका। नयी विजेता जाति के आगमन का विरोध किया जाना स्वाभाविक ही था, किन्तु पारस्परिक सम्मिलन होना भी अनिवार्य होता है, बिना इसके समाज की गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। एकता-स्थापन का कार्य साहित्य द्वारा जिस प्रकार से सफलतापूर्वक किया जा सकता है, वह इस युग में लक्षित होता है। जहाँ एक ओर तलवार की धार पर धर्म का प्रचार हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर एक शासक वर्ग (मुसलमान)

ऐसा भी था, जिसने हिन्दुओं को धार्मिक कार्य में पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता दे रखी थी। शेरशाह ने हिन्दू धर्म के प्रति उदार भावना[1] दिखायी और जनता के साथ सहयोग किया। यहाँ जनता का तात्पर्य हिन्दू जनता से है। इस प्रकार उदार भावना और जनता के सहयोग से प्रेमकाव्य का प्रचार हुआ, जो आगे चलकर हिन्दी साहित्य की निधि हो गयी।

सूफी प्रेमकाव्य

सम्वत् १३७५ के आस-पास अलाउद्दीन खिलजी के राजत्वकाल में 'मुल्ला दाऊद' ने सर्वप्रथम 'नूरक और चन्दा' नामक प्रेमकाव्य की रचना की। जब खुसरो उत्तर भारत में कवि के रूप में विख्यात हो रहे थे, उसी समय मुल्ला दाऊद का नाम भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में आता है। ग्रन्थ के अप्राप्य होने के कारण इस सम्बन्ध में अधिक कहा नहीं जा सकता। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मुसलमान कवि द्वारा लिखे जाने के कारण उसकी रचना शैली 'मसनवी' हो सकती थी। अमीर खुसरो ने भी कई मसनवियों की रचना की है[2]। इस प्रेम कथा का विशेष महत्व है क्योंकि कुतुबन, मझन, जायसी आदि की रचनाएँ, इसी परम्परा पर हुई। सम्वत् १५१६ में दामो कवि ने 'लक्ष्मण सेन पद्मावती' की रचना की। इस ग्रन्थ में शृङ्गार के साथ-साथ वीर-रस का भी अच्छा मेल है। अभी वीर-गाथा कालीन भावना का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित हो रहा था। किसी एक भावना के परिवर्तन में समय लगा करता है। नि सन्देह प्रेम-वर्णन की नीव वीर-गाथा काल ही में पड़ गयी थी। मैथिल कवि-कोकिल विद्यापति की काकली इसी काल में सुनायी पड़ी थी।

---

1. He (Sher Shah) did not listen to the advice of the Ulemas and adopted policy of religious toleration towards Hindus—A short History of Muslim Rule in India

Cambridge History of India में सर वूल्से हेग ने लिखा है—मूर्तिभंजक महमूद की सेना में एक बड़ा दल था उसके लड़के मसऊद ने अपने मुसलमान अफसरों को आदेश दे रखा था कि हिन्दुओं के धर्म भाव पर आघात न किया जाय

२—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास। पृ० १५३

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि सम्वत् १३७५ और १५१६ के बीच प्रेमकाकाव्य रचना की नींव पड़ गयी थी। मलिक मुहम्मद जायसी ने प्रेमकाव्य की रचना की परम्परा का निर्देश 'पद्मावत' के आरम्भ में किया है—

विक्रम धसा प्रेम के बारा। सपनावति कह गएउ पतारा॥
मधुपाछ मुगधावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी॥
राजकुँवर कंचन पुर गयऊ। मिरगावती कहँ जोगी भयऊ॥
साधे कुँवर खडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू॥
प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। उषा लागि अनिरुध बर-बाँधा॥

इससे स्पष्ट है कि जायसी के पूर्व 'स्वप्नावती', 'मुग्धावती', 'मृगावती', 'खण्डरावती', 'मधुमाल्ती' और 'प्रेमावती' नामक प्रेमकाव्यों का प्रणयन हो चुका था। 'मृगावती' और 'मधुमाल्ती' का तो पता चलता है। शेष के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं ज्ञात हो सका है। मधुमाल्ती की रचना के पश्चात् जायसी के 'पद्मावत' का क्रम आता है। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि जिस क्रम से जायसी ने प्रेमकाप्यों की गणना करायी है, जो उनके पूर्व रचे गये थे, और यदि वह रचना काल के क्रम से माना जाय तो मधुमाल्ती की रचना कुतुबन की रचना 'मृगावती' के पीछे की ठहरती है। रचना काल के अनुसार प्रेम-काव्यों की तालिका दी जाती है।

सख्या	रचनाकाल (सवत्)	ग्रन्थ	रचयिता
१	१३७५ के	नूरक और चन्दा की प्रेम कथा	मुल्ला दाऊद
२	१५१६	लद्मण सेन पद्मावती	दामो कवि
३	१५६६	मृगावती	कुतुबन शेख
४	१६ वीं शता	मधुमालती	मझन
५	१६६७	पद्मावत	मलिक मुहम्मद जायसी
६	१६०७	ढोला मारू की कथा	हरराज
७	१६३६-४०	माधवानल कामकदला	आलम कवि
८	१६७०	चित्रावली	उसमान
९	१६७३	रस रतन	पोहर कवि
१०	१६७३	ज्ञान दीपक	शेख नबी
११	१७६८	गुण सार	राजा अजीत सिंह
१२	१७६४	हस जवाहिर	कासिम शाह
१३	१८०१	इन्द्रावती	नूर मुहम्मद

१४	१८०८	कामरूप की कथा	हरसेवक मिश्र
१५	१८१५	हरदौल चरित	बिहारी लाल
१६	१८५३	चन्द्रकला	प्रेमचन्द्र
१७	१९०५	प्रेम रतन	फाज़िल शाह
१८	१९१२	प्रेम पयोनिधि	मृगेन्द्र
१९	२०वीं शती	मधुमालती-कथा	चतुर्भुज दास
२०	,,	चित्र मुकुट की कथा	अज्ञात

यद्यपि प्रस्तुत विषय केवल मुसलमान कवियों से ही सम्बद्ध है तथापि इस विषय पर लिखने वाले हिन्दू और मुसलमान दोनों ही पाये जाते हैं—जैसा कि ऊपर की तालिका से स्पष्ट होता है। सुविधा के लिए इन प्रेमकाव्यों को सम्प्रदाय के अनुसार दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

सख्या	मुसलमान सम्प्रदाय	सख्या	हिन्दू सम्प्रदाय
१	नूरक और चन्दा की कथा	१	लक्ष्मण सेन पद्मावती
२	मृगावती	२	ढोला मारु की कथा
३	मधु मालती	३	रस रतन
४	पद्मावत	४	गुण सार
५	माधवानल कामकन्दला	५	कामरूप की कथा
६	चित्रावली	६	हरदौल चरित
७	ज्ञान दीपक	७	चन्द्रकला
८	हस जवाहिर	८	प्रेम पयोनिधि
९	इन्द्रावती	९	मधुमालती की कथा
१०	प्रेम रतन		
११	चित्रमुकुट की कथा		

उपर्युक्त दोनों संप्रदायों के काव्य सूफी-रहस्य-काव्य और शुद्ध भारतीय प्रेमकाव्य के नाम से भी पुकारे जा सकते हैं। ऊपर के विभाजन से यह बार्ता स्पष्ट हो जाती है कि प्रेम काव्यों की रचना में हिन्दुओं का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू लेखकों द्वारा रचित प्रेम काव्यों में प्राचीन काल से आती हुई, प्रेम-रचना की परम्परा का अनुसरण किया गया है। इन कथाओं में कहीं भी सूफी-सिद्धान्त के निरूपण करने की चेष्टा नहीं की गयी, क्योंकि यह अभिप्रेत भी नहीं था। उनका प्रधान लक्ष्य था—मनोरंजन की भावना का उद्रेक और आख्यायिका का निर्माण। आख्यायिकाए काल्पनिक एव ऐतिहा-

सिक हैं। वस्तुत शुद्ध प्रेम-काव्यों की रचना करने वाले प्रधानत. हिन्दू ही थे, जिनका उद्देश्य शुद्ध साहित्यिक ही था। इनकी रचनाओं में प्रेम की रसमयी कहानी रहती थी, न कि किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन। इन प्रेम काव्यों में काव्यत्व और घटना वैचित्र्य की प्रधानता पायी जाती है। दूसरे प्रकार के प्रेम-काव्यों के रचयिता मुसलमान थे, जिनपर विशेष रूप से सूफीवाद का प्रभाव था। इनका लक्ष्य धर्मप्रचार भी था। वे काव्यो द्वारा अपने मत एव धर्म-भावना का प्रचार करना चाहते थे। इन कवियों ने अपने उद्देश्य-सिद्धि के लिए बोल-चाल की भाषा अपनायी और दोहे चौपाई जैसे सरल छन्दों में रचना की। कथानक भारतीय ही थे। जब कभी कोई किसी देश में धर्म फैलाना चाहता है, तब वह उसी देश की कथाएं लेकर अपने स्वार्थ की सिद्धि का प्रयास करता है।

प्रेमकाव्यों का कथानक और शैली

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि सूफी प्रेमकाव्यों के कथानक भारतीय थे। प्रेमकाव्यों की सम्पूर्ण कथा हिन्दू पात्रो के जीवन में घटायी गयी है, जिनमे हमें हिन्दुओं के देवी-देवताओ के प्रति किये जाने वाले सम्मान का भी दिग्दर्शन मिलता है। यद्यपि ऐसी कथाओ का प्रतिपाद्य विषय एक मात्र सूफीवाद' था, तथापि इनमें हिन्दूधर्म के लिए किन्हीं अपमानजनक बातों का समावेश नहीं है। हा, यह बात अवश्य है कि हिन्दुओं के देवी-देवताओ के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी न होने से कहीं-कहीं वर्णन अप्रासगिक[1] हो गया है। हिन्दू-धर्म की अद्भुत बातों, देवताओं के विचित्र कृत्यों, तथा घटनाओं की अलौकिकता का सन्निवेश, चमत्कार उत्पन्न करने के लिए, किया गया है। इसके अन्तर्गत किसी भेद-भाव की भावना नहीं दिखायी पड़ती। प्रेम-गाथा की ही परिधि में कथावस्तु का पूरा-पूरा विस्तार है, कोई अलौकिक आख्यान ऊपर से नहीं जुड़ा हुआ है, साथ ही सूफी-सिद्धान्त का पृथक रूप से कहीं प्रतिपादन भी नहीं किया गया है। प्रेम-सिद्धान्त की प्रसंग-प्राप्त व्याख्या में ही स्वाभाविक रूप से सूफीमत की बातें आ गयी हैं। कथा की समाप्ति पर लौकिक और अलौकिक पक्षों का उल्लेख रूपक के रूप में अवश्य कर दिया है[2]। इन प्रेम काव्यो की रचनाए तत्कालीन मध्य देशीय बोलचाल की भाषा (अवधी)

१—देखिए-सक्षिप्त पद्मावत (नवीन सस्करण) पृ० ८६

२—जायसी ग्रन्थावली (प्राचीन सस्करण) पृ० ३३२ ।

में हुई। रचना में दोहे चौपाई जैसे छोटे-छोटे छन्दों का व्यवहार किया गया है। इन रचनाओं में तत्सम् और समासों का बहुत कम प्रयोग पाया जाता है इन प्रेमकाव्यों में भारतीय शैली पर लिखे गये महाकाव्यों की सी गम्भीरता की झलक पायी जाती है। यद्यपि ये रचनाए संस्कृत प्रबन्ध-काव्यों की सर्गबद्ध पद्धति पर नहीं हुई हैं, तथापि प्रधान रूप से शृगार और गौण रूप से वीर रस का ग्रहण, उन प्रबन्ध काव्यों से इन्हें बहुत कुछ मिला देता है। बात यह थी कि संस्कृत में ही, गद्य में प्रेम कथाएँ बड़े विस्तार से लिखी जाती थीं। जिनमें से बहुतों का लोप हो गया है। महाभाष्यकार पतजलि ने 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' सूत्र में प्रेमगाथाओं का उल्लेख किया है, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। रचना मसनवी शैली के आधार पर की गयी है। यह शैली फारसी है। डाक्टर राम कुमार वर्मा 'मसनवी' की उत्तपति के सम्बन्ध में लिखते हैं 'सम्भवत' अलिफ लैला' के घटना वैचित्र्य से 'मसनवी' निर्मित हुई। मौलाना नदवी का कथन है—कहानियों की प्रसिद्ध 'अल्फि लैला' नामक पुस्तक में सिन्द-बाद की दो कहानियाँ हैं, जिनमें से एक में सिन्दबाद नाम के व्यापारी की जलयात्रा की और दूसरी में स्थल-यात्रा की अद्भुत घटनाएँ बतलायी गयी हैं। 'अल्फि-लैला की वर्णनात्मक और विलक्षण घटना-कौतूहल ने ही सम्भवत' मसन-वियों को जन्म दिया [१]। मसनवी शैली के अनुसार काव्य में, आरम्भ में ईश्वर की वन्दना, मुहम्मद साहब की स्तुति, शाह वक्त की प्रशसा, गुरु-परम्परा, अपने मित्रों आदि का विवरण दिया जाता है। इन प्रेमकाव्यों के रचयिता किसी न किसी रूप में फारस से सम्बद्ध ही थे, ऐसी स्थिति में वहाँ का प्रभाव पड़ना कोई अस्वाभाविक बात नहीं कही जा सकती। शुद्ध प्रेम काव्यों का अवसान जहाँ सुखमय था, वहाँ सूफी प्रेम काव्यों का अवसान दुखमय। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि शुद्ध प्रेमकाव्यों का सम्बन्ध हिन्दुओं से था। सूफी-वाद के अनुसार उनके प्रेम काव्यों का दुखान्त होना सिद्धान्तत' उचित ही है। यह ध्यान देने की बात है कि शुद्ध प्रेमकाव्यों में प्रतीक एव रहस्य को स्थान नहीं मिला है, किन्तु सूफी-प्रेम-काव्यों में दोनों ही वस्तुओं का यथेष्ठ सम्मि-श्रण हुआ है।

विशेषताएँ

सूफी कवियों ने अपनी रचनाएँ प्रेम-गाथाओं को लेकर की हैं। इसलिये प्रबन्ध की धारा प्रेम की धारा के विस्तार के कारण कहीं भी छिन्न-भिन्न

१—देखिए-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २३८।

नहीं हो सकी है। इस कार्य में पूरी सफलता भी मिली थी। 'प्रेम! प्रेम! की पुकार करने वाले सम्पूर्ण भूमण्डल में उसकी व्यापकता चाहने वाले सूफी कवि, कैसे न प्रेम गाथाओं को अपनाते। सूफियों का प्रेम पर असाधारण अधिकार था, उन्होंने प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के सम्वेदनापूर्ण वर्णन में बहुत ही कौशल दिखलाया है। वेदना का प्रवाह बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी ही है। कथा की प्रभावुकता और कवि की भावुकता स्पष्ट लक्षित हो जाती है। रचनाएँ अनुभूति प्रधान हैं। ईश्वरदास विरचित 'सत्यवती' कथा में उस संवेदना का आभास नहीं मिलता, जो इन कवियों की रचनाओं से स्पष्ट रूप में प्रकट होता है। रचनाएँ पद्यमय हैं। इसका एक मात्र कारण यह है कि सगीततत्व की योजना द्वारा पद्य में समास शैली से अभिव्यक्त, अनुभूतियों में ही पूर्णता पायी जाती है। यही कारण था कि संस्कृत नाटकों में जहाँ कथोपकथन गद्य में होते थे, वहीं अनुभूति की तीव्रता के कारण पद्यों की योजना भी की जाती थी। शेक्सपियर के सम्बन्ध में भी उसके आलोचकों का कहना है कि उसने अपने नाटकों में पद्य का व्यवहार वहीं किया है, जहाँ भाव का वेग अतितीव्र हो गया है। वास्तव में कविता मानव-जीवन, मानव-अनुभूतियो और मानव-अन्तर्वृत्तियों का विशद् चित्र है। यही कारण है कि, कविता अजर और अमर है। इस सम्बन्ध में 'कविर्मनीषी परिभू. स्वयम्भू.' आदि उपनिषद् वाक्य प्रसिद्ध हैं। ग्रन्थों की भाषा ठेठ अवधी है। इन प्रेम काव्यों में प्रयुक्त भाषा तुलसीदास की अवधी के समान संस्कृत गर्भित नहीं है। अवधी अपने पद-लालित्य के लिए प्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तिया द्रष्टव्य हैं—'ब्रज भाषा में दोहा रचने में बिहारी सिद्धस्थ थे ..... पर पद लालित्य में उनके दोहे भी पूर्वी भाषा (अवधी) के दोहों को भी नहीं पहुंच सकते।[1]' प्रेम काव्यों की भाषा संस्कृत गर्भित न होते हुए भी स्वाभाविक और श्रुति मधुर है। मुसलमान लेखकों को भाषा का सरल और स्वाभाविक रूप ही ग्रहण करना पड़ा, क्योंकि वे साहित्यिक भाषा से पूर्ण परिचित नहीं थे। प्रेम कथाओं के हिन्दू लेखकों की भांति, वे काव्यत्व न ला सके। इनकी भाषा में फारसी शब्दों का अच्छा मेल है। रचनाएँ भावयुक्त और गूढ व्यंजनाओं से भरी हुई हैं। यद्यपि सूफी कवि क्रूरता और कट्टरता के वातावरण में पले थे, तथापि उनकी रचनाओं में माधुर्य की मात्रा प्रचुर ही नहीं है, वरन् उनकी रचनाएँ उससे ओत-प्रोत हैं। सूफी-कवियों ने फारसी शैली के साथ भारतीयता का सुन्दर सामं-

१—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'चित्रावली' की भूमिका।

जस्य स्थापित करने का प्रशसनीय प्रयास किया है। शैली मसनवी है। कथाओं का विभाजन सर्गों में न करके, घटनाक्रम के अनुसार, प्रसगों में विभाजित किया है। सूफियों के मतानुसार ससार को सम्पूर्ण विभूति उसी एक परम ब्रह्म की देन है। उसी की तन्मयता में उन्हें परमानन्द[1] मिलता है।

सूफियों की ग्रन्थ-आरम्भ करने की शैली[2] उनकी साम्प्रदायिक भावना पर आश्रित है। हमारे यहाँ भी वन्दना की पद्धति प्राचीनकाल से चली आती है—'चिकिर्षितस्य ग्रंथस्य निर्विघ्न समाप्तर्थं मगल कुर्यात्'—गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में ईश्वर वन्दना का जो विशद् आयोजन किया है, उसकी तुलना में भारतीन वाङ्मय मे ही नहीं विश्व-वाङ्मय में भी ऐसी वन्दना का पाया जाना कठिन है।

सूफियों मे हृदय की उदारता एक बड़ी विशेषता है, जिसके कारण सहज में ही दूसरों के हृदय को आकृष्ट करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। जायसी आदि सूफी कवियों ने प्रेम के आधार पर सामाज में जो एकता लाने का प्रयत्न किया, वह स्तुत्य है। इनके ग्रथों में रहस्यवाद पाया जाता है, जो इनकी अपनी विशेषता है। अनेक स्थलों पर हठयोग का वर्णन भी पाया जाता है, जो भारतीय हठयोगियों का प्रभाव है। कथावर्णन द्वारा उनकी धार्मिक भावनाएँ अप्रस्तुत रुप से व्यक्त होती हैं, जो मुख्य-रुप से सूफियों का साध्य था। प्रेम काव्यों में दोहरी धारा चलाने का प्रयास किया गया है, किन्तु उनका अन्त तक निर्वाह नहीं हो सका है। पहली धारा तो लौकिक कथा के रुप में पायी जाती है, किन्तु दूसरी का सम्बन्ध आध्यात्मिक जगत से है। कथा के नायक को साधक और नायिका को ब्रह्म ज्योति, दूत (सुग्गा आदि) को गुरु रुप दिया गया है। इन कथाओं में प्रतीकों का समावेश कम महत्वपूर्ण नहा है। इन प्रतीकों को सुविधा के लिए नीचे के वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

१—साहित्यिक परम्परा से गृहीत—कोयल, पपीहा, मयूर, भुवगम

१—आ यं माशूकम्न सूरत नेस्ता। ख्वाह इश्के ई जहा ख्वाह आ जहा॥
(भावार्थ—इहलोक और परलोक दोनो मे प्रेमियों के लिए वही परम प्रिय है)
—ईरान का सूफी कवि 'रूमी'

२—सुमिरौ आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह ससारू॥
कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मुहमद पुनोकरा॥
सेर साह देहली सुलतानू। चारिउ खण्ड तपै जस भानू॥
सैयद असरफ पीर पियारा। जेहि मोहि पथ दीन्ह उजियारा॥

आदि क्रम से प्रेम, उन्माद, व्यथा, कामदशा आदि के वर्णन में प्रयुक्त किये गये हैं।

२—योग साधनों से लिये गये—चक्र, मञ्ज़िलें, द्वार, सीढ़ियाँ आदि आध्यात्मिक जगत के प्रतीक-रूप में।

३—रहस्यात्मक संकेत—वधू (जीवात्मा) मायका (इहलोक), ससुराल (परलोक), प्रिय (ब्रह्म) आदि।

४—सृष्टि के रमणीय दृश्य भी प्रतीक के रूप में आये हैं—

'हीरा लेई सो विद्रुम धारा।
विहंसत जगत होई उजियारा।'

कवि अप्रस्तुत की व्यंजना प्रस्तुत प्रभात कालीन-दृश्य वर्णन द्वारा करता है—परमज्योति की दीप्ति से सम्पूर्ण विश्व आलोकित होता है।

इन काव्यों में प्रेम की भावना ही मुख्य है। यह सूफ़ीमत का प्रधान अङ्ग है। सूफ़ीवाद और इन प्रेम काव्यों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इन रचनाओं में सूफ़ीवाद की सम्पूर्ण बातें लक्षित होती हैं। सूफ़ी-सिद्धान्त की व्याख्या प्रसंगानुकूल आगे की जायगी। 'प्रेम' सूफ़ियों के लिए महत्वपूर्ण भावनामय तत्त्व है। उनका सब कुछ 'प्रेम' ही है। प्रेम की भावना एकदेशीय, एक वर्गीय, एक जातीय ही नहीं वरन् सार्वभौम[1] है। पर सूफ़ियों ने साधना-मार्ग 'इश्क़' (प्रेम) को ही प्रधान रूप से ग्रहण किया। इसके लौकिक और अलौकिक दोनों ही रूप गृहीत हुए। उनकी रचनाओं में इस दृष्टि से प्रेम का होना स्वाभाविक ही है, वे इसकी उपेक्षा कैसे कर सकते थे। उनका सिद्धान्त ही 'प्रेम' है।

१—भारतीय—गुण रहितं कामना रहितं प्रतिक्षण वर्द्ध—
मानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्—
—नारद

प्रेम हरी कौ रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होय द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप॥
—रसखान

पारसीक—तू न होवे तो नज़्म कुल उठ जाय।
सच्चे हैं शायरां, ख़ुदा है इश्क़॥
—मीर

पाश्चात्य—Love is God and God is Love.
—अज्ञात

सूफीवाद

सूफी-कवियों के प्रेम-वर्णन पर विचार करने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सूफीवाद पर पहले विचार किया जाय। सूफीवाद को ही आधार-शिला मानकर सूफी कवियों ने प्रेम वर्णन की भित्ति का निर्माण किया है। विस्तार-भय से सक्षेप में सूफीवाद पर विचार करना उपयुक्त जान पड़ता है।

आरम्भ

फारस के एक सम्प्रदाय ने ईसा की आठवीं शताब्दी में अपने देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की चेष्टा की और उसमें उन्हें सफलता भी मिली। इस छोटे से दल ने परम्परा से आने वाले इस्लामधर्म के आदर्शों का तीव्र स्वर से विरोध करना आरम्भ किया। यहाँ पर उक्त सम्प्रदाय को 'दल' कहना अधिक समीचीन जान पड़ता है, क्योंकि आरम्भ में इसके अनुयायियों की सख्या बहुत थोड़ी थी। यही दल आगे चलकर सूफीमत का जन्मदाता हुआ। यह दल सासारिक सुखों से तटस्थ रहते हुए, वाह्य-जगत के सौन्दर्य का कट्टर-विरोधी निकला। इनका एक मात्र सिद्धान्त, सादगी एवं सरलता था। इस दल के लोग सादगी को ध्यान में रखते हुए सफेद ऊन के वस्त्र धारण करने लगे। फारस में ऊन को 'सूफ' कहते हैं। श्वेत ऊनी-वस्त्र धारण करने के कारण इस दल के लोग 'सूफी' नाम से पुकारे जाने लगे। ये लोग 'प्रेम की पीर' से व्यथित फक़ीर थे और अपने इसी मत का प्रचार करते थे। इन्हें मनुष्य की सच्ची रागात्मिका वृत्ति का अनुभव ऐसे समय में हुआ था, जब कि परिस्थिति ऐसी गम्भीर थी—एकेश्वरवाद के प्रचारक मुसलमानों के सामने भावुकता नाम की किसी वस्तु का पता ही न था। सर्वत्र कट्टरता एव क्रूरता ही का बोलबाला था। यह सम्प्रदाय जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि वाह्य-आडम्बरों से दूर रहने वाला था, अतएव, ससार के क्षेत्र से दूर रहने की चेष्टा करते हुए इसने अपनी साधना का ध्येय आध्यात्मिक प्रेम (इश्क़ मजाजी) बनाया तथा ससार के दिखावटीपन को घृणा की दृष्टि से देखते हुए, सूफी लोग एकान्तवासी हुए और सरलता से जीवन-निर्वाह करने लगे। ऊपर दल को सम्प्रदाय इसीलिए कहा गया है कि दल ने ही धीरे-धीरे सम्प्रदाय की

स्थापना कर दी थी। यह सम्प्रदाय कालान्तर में बड़ी तीव्रता के साथ फैला और इसका प्रभाव फारस आदि देशों तक ही परिमित न रहा प्रत्युत भारत भी इस प्रभाव के क्षेत्र में आ गया।

सूफी मत के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। थोड़े में उनके मतों का दिग्दर्शन करा देना आवश्यक जान पड़ता है। सूफी-मत पर विचार करने के पूर्व सर्वप्रथम सूफी शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया जा सकता है।

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति

मुसलमान विचारकों के अनुसार सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'तसव्वुफ' शब्द से हुई है। तसव्वुफ का व्यवहार मुहम्मद साहब के कुरान में किया गया है। तसव्वुफ—जो एक मानसिक स्थिति है, उसका प्रादुर्भाव उस स्थिति में होता है, जब मानसिक स्थिति सम्पूर्ण रहस्यों की भावना से परे होती है[1]।

ग्यासुल लुग़ात के लेखक का मत है कि 'सुफ्फा' नामक अरबों की एक जाति थी, जो इधर-उधर भ्रमण किया करती थी। यह जाति अपने शैशव काल (Time of Ignorance) में संसार से विमुख हो, मक्का के मन्दिरों में पूजा पाठ किया करती थी। सुफ्फा अथवा सूफा नाम की यह जाति 'वेनी मुजार' क्षेत्र में जाकर बस गई और यहीं से सूफी सम्प्रदाय प्रचलित हुआ और कालान्तर में उक्त वर्ग के लोग सूफी कहलाने लगे।[2]

प्रसिद्ध विद्वान इनायत खाँ का मत है—यद्यपि कुछ विद्वान सूफी शब्द की व्युत्पत्ति अरबी धातु 'सूफा' से बताते हैं, जिसका अर्थ होता है 'ऊन' क्योंकि सूफी लोग ऊनी वस्त्र धारण करते हैं। सूफी संप्रदाय में यही अर्थ प्रचलित भी है। कदाचित इस शब्द का सम्बन्ध अरबी के 'साफ' शब्द से है जिसका अर्थ होता है 'शुद्ध' भेदभाव की भावना से रहित; किन्तु अधिकाश मे सम्भावना यही है कि 'सूफी' शब्द का सम्बन्ध यवनानी शब्द सोफिया (Sofia) से हो, जिसका सम्बन्ध आध्यात्मिक चिन्तना से है। आध्यात्मिक चिन्तना ही सूफियों की प्रधान प्रवृति है।[3]

1—Origin and Earliest Sects of Sufism.

2—Studies in Tasawuf Page 121

3—Lectures on Sufi-movement by Inayat Khan. Page 10.

कुछ लोगों की धारणा है कि घूमने-फिरने वाले फ़कीर अथवा दरवेश मदीना में मस्जिद के सामने चबूतरे पर एकाग्रचित्त होकर भगवद्-भक्ति किया करते थे, वे फकीर 'सूफ़ी' कहलाते थे। मस्जिद के सामने के चबूतरे को 'सुफ्फा' कहते हैं, अत: सुफ्फा पर बैठने के कारण 'सूफ़ी' कहलाये।

एक वर्ग सूफी शब्द का सामंजस्य 'सफाई' शब्द से भी स्थापित करता है जिन्होंने संसार में रहने वाले सांसारिकता में लिप्त मनुष्यों से घृणा कर जीवन का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक सफाई बना रखा था, वे ही सूफी कहलाये। उनके यहा सफाई का अर्थ आभ्यंतर सफाई था, न कि वाह्य।

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सफ्फ' शब्द से भी निकाली जाती है, जिसका अर्थ होता है 'पक्ति'। मुसलमानों की धारणा है कि प्रलय (क़यामत) के दिन सभी मरे हुए व्यक्तियो को क़ब्र से निकल कर परमात्मा (अल्लाह) के सामने पाप-पुण्य-निर्णय के दिन फैसला सुनने के लिए पक्ति मे खड़ा होना पड़ेगा। मुसलमानो का ऐसा विश्वास है कि मरे हुए व्यक्तियो के कर्मों का फैसला क़यामत (प्रलय) के ही दिन होता है। इस पाप–पुण्य–निर्णय के दिन जितने व्यक्ति अपने सदाचार एव आत्मा की शुद्धता के कारण सर्व-साधारण व्यक्तियों से पृथक ईश्वर के सामने सर्वप्रथम पक्ति में खड़े किये जाएंगे, वे सूफी हैं।

हम देखते हैं कि 'सूफ़ी' शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में मुख्यरूप से दो मत हैं। प्रथम मत तो सूफी शब्द की व्युत्पत्ति वाह्य-आचार-विचार व्यजक शब्दों से मानता है। यद्यपि उसमें आभ्यन्तर को अलग न करके प्रकारान्तर से उसी पर वल दिया गया, तथापि वह वाह्यनिरूपक कहा जा सकता है। दसरा मत मानने वाले व्यक्ति सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति ऐसे शब्द से निकालते हैं, जिसका सम्बन्ध प्रमुख रूप से ज्ञान से ही है। इस प्रकार से दो मत सामने आते हैं।

पाश्चात्य विद्वान् मुख्य रूप में निकल्सन, ब्राउन, मारगोलिथ प्रभृति व्यक्ति प्रथम मत के ही मानने वाले हैं। फारसी में लिखे ग्रन्थों में 'लिबास-उस्-सूफ़' (ऊनी वस्त्र धारण किये हुए) के अनेक प्रसग इसकी पुष्टि करते हैं। पर यवनानी शब्द 'सोफ़िया' (Sofia— ज्ञान) से सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति अधिक समीचीन जान पड़ती है। सूफी लोगों का सम्बन्ध भी ज्ञान-मार्ग से ही है। सोफ़िस्ट (Sofist) का अर्थ भी ज्ञान-मार्गी होता है।

सूफी की परिभाषा

सूफी मत के प्रसिद्ध विद्वान् धून नून मिस्री के अनुसार सूफी उस व्यक्ति विशेष को कहते हैं, जो शान्त हो और भौतिकता से परे हो। (अन् सफी इज़ा नतक़ वे आना तकि हिमिन अल् हक़् य क़ी वा अन् शक़ुत नुतक़ता अन् हुल जवारीह चक्रि तील अलाविक़)।

बग़दाद के सूफी विद्वान जुनियाद साहब का कथन[1] है कि 'तसव्वुफ' में 'शब्द' (सांसारिकता) का विनाश हो जाता है। ईश्वर की अलक्ष्य सत्ता का आविर्भाव होता है और ब्रह्म का अच्युत रूप सामने आ जाता है। ईश्वर ने स्वयं कहा है—'मेरे ही लिये व्रत है और मैं ही उसका पुरस्कार हूँ।'

हसन नूरी साहब सभी प्रकार की सांसारिक विभूतियों का त्याग करने वाले को सूफी मानते हैं। सूफी के पास किसी प्रकार की सम्पत्ति नहीं रहती और न वह इसके लिए भव-जाल में ही पड़ता है। वह निर्लिप्त एवं तटस्थ व्यक्ति है। उसमें सांसारिकता के प्रति लेश-मात्र भी झुकाव नहीं रहता।

एक दूसरे विद्वान अब्बु बाकर शिबली का कहना है कि 'तसव्वुफ' वह है जिसे निर्वाण प्राप्त हो गया है, वह लौकिक और पारलौकिक दोनों ही जगत में ईश्वर पर ही चित्त एकाग्र रखता है।

रहस्यवादी ख्वाजा साहब का मत है कि आरम्भ में तसव्वुफ (सूफी) के सिद्धान्त संकेतों द्वारा बताये जाते थे। अब भी लोग एक दूसरे से संकेतों द्वारा वार्तालाप करते हुए देखे जाते हैं। धून-नून मिस्री ही सर्वप्रथम व्यक्ति था जिसने 'तसव्वुफ' के सांकेतिक सिद्धान्तों को शाब्दिक रूप दिया।[2] इसके पूर्व सूफी मतावलम्बियों को संकेत के ही द्वारा शिक्षा देते थे। सांकेतिक सिद्धान्तों को शाब्दिक रूप दिये जाने के पश्चात् बग़दाद के जुनियाद साहब ने इसे सुव्यवस्थित किया। आगे चलकर अब्दुल कासिमुल्ल क्यूशायरी ने अपने ग्रंथ 'रिसाले क्यूशायरी फिल इल्मुत तसव्वुफ' में सूफी सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया।[3]

1—Studies in Tasawuf Page 122

२—बसरा के नहीज नामक लेखक द्वारा सर्वप्रथम (७६६ ई० में) सूफी शब्द प्रयुक्त हुआ—Encyclopedia of Religion and Ethics.

3—Studies in Taswuf page 124.

कुरान में सूफियों की व्याख्या करते हुए कहा गया है—'वे लोग सूफी हैं, जो ईश्वर के सच्चे उपासक हैं। वे संसार में बहुत ही साधारण वस्त्र धारण कर रहते हैं। वे लोग मूर्ख जनता के समक्ष सम्भाषण करते समय उनके अभिवादनों का उत्तर भी देते हैं।[1]

शेख जामी के अनुसार सूफी नाम मसूल के शेख अब्बु अहाशमि के लिए सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ था।[2]

सिद्धांत

सूफी मत में आत्मा और परमात्मा की एकता मानी गयी है। सूफी जगत को भ्रम या माया न मानकर ब्रह्म का प्रतिबिम्ब[3] मानते हैं। ईश्वर की सत्ता को ही सूफी एक मात्र सत्ता मानता है। [4]वाह्य सृष्टि अर्थात् सम्पूर्ण जगत उसके लिए सारहीन दिखायी पड़ता है। आभ्यन्तर की ज्योति ही, वह तत्त्व है जो पथ-प्रदर्शक का कार्य करती है। साधक को 'परमप्रकाश' तक पहुचाती है। सूफियों के जीवन का उद्देश्य सत्य की प्राप्ति है। 'सत्य' की प्राप्ति के लिये बुद्धि अथवा तर्क का आश्रय लेने से कार्य नहीं चलता, यहाँ तो दर्शन-शास्त्र और आत्मविद्या की भी गति नहीं है। यह सत्य, बुद्धि और ज्ञान की सीमा परे हैं।

1—Muslim University Journal July 1937.

2—Waibadur Rahamanillazina Yamshuna alalarzihawnauwaiza khatabahumul ja hiluna qalasalama—Surat-ul-Furqan XXV 62.

३—स्व० आचार्य शुक्ल जी ने सूफियों द्वारा गृहीत प्रतिबिम्बवाद का अभिव्यक्तिवाद से भेद किया है—'अभिव्यक्तिवाद इस जगतत् को ब्रह्म का प्रकाश कह है और प्रतिबिम्बवाद उसकी छाया। अभिव्यक्तिवाद के अनुसार जगत भी ब्रह्म है। उसकी छाया नहीं। 'भारतीय भक्ति मार्ग में अभिव्यक्ति वाद गृहीत हुआ है। यहाँ पर प्रतिबिम्बदाव का स्पष्ट रूप लक्षित हो जाता है।'

4 The two element Body and spirit are related in explaining the mysteries of all mysteries The Sufis have the formulae of Imanatin i. e. all orignate from Him and should ultimately abroubed in Him
—Origin of Sufism.

यहाँ तो सच्ची अनुभूति की आवश्यकता है । इनकी प्राप्ति के लिए आत्म-प्रकाश की आवश्यकता है, और उसके लिए योगाभ्यस अपेक्षित है। इस योगाभ्यास की भूमिका नीरस एवं शुष्क न होनी चाहिए। भूमिका सरस तभी हो सकती है जब 'प्रेम' का उसमें योग हो । अत सूफियों ने 'प्रेम' को प्रधानता, इसी लिए दी है। इस प्रकार की भूमिका पर वह दशा उत्पन्न होती है बहा पर 'अहं' का ब्रह्म से साक्षात्कार होता है । 'अह' आत्मा ही है । बिना इस प्रकार की भूमिका के 'ब्रह्म' को प्राप्त करना असम्भव सा ही है । मानवजीवन का एक मात्र लक्ष्य यह है ।सूफी इसी लक्ष्य के पीछे व्याकुल रहता है और उसे लक्ष्य प्राप्ति में ही शान्ति है । सूफियों का धर्म-ग्रन्थ ही प्रकृति है, जो पाठकों के हृदय को आह्लादित कर देती है । सूफियों की सब से बड़ी विशेषता है, विश्वबन्धुत्व की भावना । परमात्मा के समक्ष भेद-भाव कैसा ? प्रेम जाति-पाँति के बन्धन को नहीं मानता । सूफी केवल एक ही वस्तु के प्रशसक हैं, वह है 'सौन्दर्य' जो साधक के हृदय को दृश्य-जगत से अदृश्य जगत की ओर प्रेरित करता है। यह 'सौन्दर्य' भी उस 'ब्रह्म' की छटा को दिखाता है । कहने का तात्पर्य यह है, कि ईश्वर की सत्ता को सूफी एक मात्र सत्ता मानते हैं, उसी सत्ता में विश्वास करना उनका परम धर्म है, और उसकी प्राप्ति के लिए उनके सामने 'प्रेम मार्ग है।

सच्चा सूफी अपने अन्त.करण को पवित्र रखने के लिए सदैव सचेष्ट रहता है । ईश्वर की आराधना में होने वाले अनेक कष्ट को सहन करने के लिए वह सदैव उद्यत ही नहीं रहता, वरन् उत्सुक भी रहता है । सूफियों का प्रेम 'लौकिक' न होकर 'पारलौकिक' होता है । सूफी इसी 'प्रेम की पीर' से व्याकुल रहता है। प्रेम में इतनी व्याकुलता होती है कि मूर्च्छा की अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसे सूफी अपनी भाषा में 'हाल' कहते हैं। आत्मा, साधक-रूप में 'ब्रह्म' से मिलने के लिये व्याकुल होती है । वियोग उसे असह्य हो जाता है । ऐसी अवस्था में ध्यान करते-करते व्याकुल हो जाना कोई असम्भव बात नहीं, यह अनुभूति का चरमोत्कर्ष है—

१—प्रसिद्ध कवि रूमी एक उदाहरण द्वारा समझाता है—'किसी ने प्रियतम के द्वार पर पुकारा भीतर से प्रश्न हुआ तू कौन ? पुकारने वाले ने कहा—"मैं" । भीतर से आवाज आयी यहाँ 'मैं' और 'तू' दो नहीं रह सकते। द्वार बन्द हो गया। दुखी प्रेम वापस चला गया। कुछ काल कर सहकर पुन: आया और पुकारा। पुन वही प्रश्न तू कोन ? प्रेमी ने उत्तर दिया 'तू' । द्वार खुल गया '(ईरान के सूफी कवि' की भूमिका से)।

देखत देखत दिन गया, निस भी देखत जाय।
विरहीन पिव पावै नहीं, केवल जिय घवराय ॥

अपने यहाँ श्रीमद्भागवत में भी इसी प्रकार का वर्णन पाया जाता है। जबकि गोपियां विरह में व्याकुल होकर गिर पड़ती हैं। उस समय प्रेम की चरम-सीमा आ जाती है। चैतन्य-सम्प्रदाय के लोग भी ईश्वर-भक्ति में गान करते-करते तन्मय हो जाते हैं और 'मूर्च्छना' की अवस्था आ जाती है। कुछ लोग 'मूर्च्छना' को सूफियों का प्रभाव कहते हैं, किन्तु यह न भूलना चाहिये कि इस प्रकार का वर्णन श्रीमद्भागवत, भक्ति-सूत्र आदि ग्रन्थों में भी आया है। हो सकता है कि सूफियों के प्रभाव से थोड़ा बहुत रूप का परिवर्तन हो गया हो।

सूफी 'दिव्य-प्रेम' के उपासक और भिक्षुक हैं। वे सर्ववाद के उपासक हैं, उन्हें प्रकृति के कण-कण में प्रिय की छटा दिखायी पड़ती है। इनके लिए 'कुफ्र' और 'ईमान' नामक किसी वस्तु की सत्ता ही नहीं है। उनके लिए दोनों ही ढोंग है। संसार के वाह्याडम्बरों को, सूफी पाखण्ड मानता है। उसके निकट हिन्दू-मुसलमान, मतमतान्तर, ऊंचनीच आदि का कोई मूल्य ही नहीं है। सूफी तो संसार के नानत्व में एकत्व देखने वाले हैं। वे ऐसे स्थान में सदैव मस्तक झुकाने को प्रस्तुत रहते हैं, जहाँ कहीं उन्हें प्रिय की छवि दिखायी पड़ जाय। सूफियों की दृष्टि में प्रेमी का सम्बन्ध सांसारिकता से परे है। उसका कोई धर्म नहीं, वह तो सभी धर्मों से परे केवल भगवद्प्रेम से ही अपना सम्बन्ध रखता है। सूफी प्रेम की ही साधना में सतत् लगा रहता है[१]। उसके और महान् प्रेम के बीच जो पर्दा पड़ा हुआ है। उसे दूर करना ही सूफी का ध्येय है, जिससे प्रिय का साक्षात्कार हो जाय। वह 'त्वं' और 'तत्' को एक करने वाला है। सूफी 'सोऽहमास्मि' एवं 'तत्वमसि' को चाहने वाला है। साक्षात्कार के लिए-आत्मज्ञान की बहुत बड़ी आवश्यकता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति कराने वाल गुरु [२]माना गया है।

१—मर्द आशिक रान वाशद इल्लते, आशिकां रान देहे मिल्लते मनहवे इश्क अज दमा दीनहा जुदास्त, आशिक रा मज़हव व मिल्लते जुदास्त। ईरान के सूफी कवि 'पृष्ठ' 'ख'

२—सूफी कवि रूमी कहता है—'पीर चुनो विना पीर केयह साधना मार्ग 'बहुत ही कष्टप्रद, भयानक और विपत्तिमय है। ओ सत्य के वैभव हुसामुद्दीन कागज के कुछ पन्ने और ले और (गुरु) के वर्णन में उन्हें कविता से जोड़ दे। ईरान के सूफी कवि।

१—शरीयत—उस अवस्था को कहते हैं, जब आत्मा 'रसूल' द्वारा दिए गये आदेशों का पालन करती है अर्थात् भारतीय कर्मकाण्ड।

सूफी-साधक, ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग में निम्नलिखित अवस्थाओं को पार करता है, जिसके लिए धैर्य अपेक्षित है—

२—तरीक़त—इस अवस्था में जीवात्मा बाह्य-जगत् के क्रिया-कलापों से दूर रहकर आत्मशुद्धि द्वारा ईश्वर का चिन्तन करता है। इस स्थिति में साधक का ज्ञान प्रसारित होने लगता है और वह ईश्वर-तत्व की अनुभूति प्राप्त करता है। जीव को भगवद्प्राप्ति का 'तरीका' मालूम हो जाता है। यह भारतीय उपासनाकाण्ड है।

३—हक़ीक़त—इस दशा में साधक के हृदय में ज्ञान का उद्रेक हो जाता है। यह ज्ञान की वह अवस्था है, जिसमें थोड़े चिन्तन से ही ईश्वरानुभूति हो जाती है। यह भारतीय ज्ञान काण्ड है।

४—मारफ़त—यह जीवात्मा के लिये, वह अवस्था है जहां पर आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है। 'अहं ब्रह्मास्मि' की भावना सार्थक हो जाती है। रूमी ने अपनी कविता में इस सिद्धावस्था की व्याख्या बड़े ही सुन्दर ढंग से की है। यही भारतीय सिद्धावस्था या बौद्धों का 'निर्वाण' है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस अवस्था में भेदत्व का नाश हो जाता है, आत्मा बक़ा (अमर) होने के लिए फ़ना (शरीर का अस्तित्व हटना) हो जाती है। यहीं पर सत् (आलमे नासूत), चित् (आलमें मलकूत) और आनन्द (आलमे जबरूत) का समन्वय हो जाता है।

साँची राह 'सरीयत' जेहि बिसवास न होई।
पाव राखै तेहि सीटी, निभरम पहुँचै सोई॥
कही सरीयत चिस्ती पीरू। उधरी असरफ औ जहंगीरू।
राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुडूकी॥

इन अवस्थाओं के साथ ही सूफियों ने भारतीय वेदान्तियों की भांति प्राणियों में चार वस्तुओं का होना माना है—(१) नफ्स (इन्द्रिय) २—रूह (आत्मा) ३—क़ल्ब (हृदय) और ४—अक्ल (बुद्धि)।

साधना-मार्ग में 'नफ्स' के ही कारण अनेक बाधाए उपस्थित होती हैं। वासनाएं उत्पन्न होती हैं, मन चंचल होता है। परम ज्योति के दर्शन लिये व्यग्र-आत्मा की गति कुण्ठित हो जाती है। मानव-हृदय में एक आन्तरिक द्वंद आ जाता है। ऐन्द्रिक प्रेरणा और सात्विक ज्ञान के बीच होने वाले संघर्ष को सूफी 'जेहाद' कहते हैं। इन्द्रिय जनित वासनाए 'बद्' (अशुभ) के नाम से

पुकारी जाती है। ईश्वर तक पहुंचने में 'नियाज़' का ही प्रमुख स्थान है। इन्द्रियों के आकर्षण से छुटकारा पाने के लिए ईश्वर ने मनुष्य में वह शक्ति दी है, जो सदैव 'ब्रह्म सान्निध्य' की याद दिलाती है—यदि वह शक्ति कुण्ठित न कर दी जाय। प्रसिद्ध विद्वान कुरैशी ने, इस आन्तरिक शक्ति को 'सिर्र' की संज्ञा दी है। 'कल्ब' ही सत्य का दर्पण है। जिसके स्वच्छ रहने से ही दिव्य ज्योति उसमें प्रतिबिम्बित होती है। वस्तुत हृदय का धर्म ही सत्य ग्रहण और सत्य-प्रकाशन है। एक अन्य विद्वान जिली 'कल्ब' (हृदय) और रुह (आत्मा) में कोई भेद नहीं मानता। सूफियों ने नफ्स को साधना मार्ग में बड़े बाधक के रूप में चित्रित किया है। काम, क्रोध, मद, तृष्णा आदि की भाति ही नफ्स भी परमार्थ के मार्ग में बाधक है। इसी से आत्म-सयम के लिए इन्द्रिय-निग्रह पर अधिक बल दिया गया है। नफस का मार्ग विनाशकारी है। साधकों ने इस नफ्स को यत्र-तत्र सर्प, वृश्चिक आदि निकृष्ट जीवों के रूप में चित्रित किया है। नफ्स की प्रबलता की आशका के कारण कल्ब को उससे बचाने के लिए सूफी 'मुजाहदा' (निरोध) का उपदेश ग्रहण करता है, जिसके द्वारा कल्ब, नफ्स पर अधिकार स्थापित कर लेता है।

सूफी-साधना-पद्धति के अनुसार मुरीद (साधक) ऊपर कही गयी चार अवस्थाओं में क्रम से इन स्थितियों को प्राप्त होता है—नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत। लाहूत पूर्णत्व की स्थिति है।

उपसंहार

आत्मा और परमात्मा में अभेदत्व मानना ही सूफीमत का मुख्य सिद्धान्त है। भारतीय वेदान्त से सूफीमत बहुत कुछ मेल खाता है। प्रमुख विद्वान नदवी साहब सूफी मत और वेदान्त के साम्य को लक्ष्य कर कहते हैं-'निस्सन्देह मुसल्मान सूफियों पर, भारत में आने पर, हिन्दू वेदान्तियों का प्रभाव पड़ा।' नदवी साहब के अनुसार सूफियों पर वेदान्त का प्रभाव उनके भारत-आगमन पर पड़ा। किन्तु सूफी, भारत-आगमन से पूर्व भारतीय अद्वैतवाद से प्रभावित कहे जा सकते हैं। यह बात बहुत अंशों में सत्य है कि वेदान्तियों का अद्वैतवाद ही भारत से फारस गया और विकसित हुआ तथा पुन भारत में सूफीवाद के रूप में अवतरित हुआ। यद्यपि मुसलमान विद्वान इसे कुछ और ही रूप देते हैं। उपर्युक्त कथन की पुष्टि निम्नलिखित पंक्तियों से की जासक्ती है—

— अरब भारत का सम्बन्ध पृ० २०२।

Among Mohamadans there were Sufi faquirs, who united with nobler ties than those of blood i. e by those thoughts. This monastic Pantheism was a gift from Hindu Philosophy. × × × The commercial contact between India and Arbia is as old as 1086 B. C.[1]

अर्थात् मुसलमानों में बहुत से सूफी फकीर थे, जिनका हिन्दुओं से रक्त सम्बन्ध से प्रबल विचार अथवा भाव-सम्बन्ध था। उनकी भावना हिन्दू-दर्शन का प्रभाव था। भारत और अरब का सम्बन्ध १०८६ ई० पू० से चला आ रहा है।

अत स्पष्ट हो जाता है कि सूफीवाद भारतीय वेदान्त का ही प्रभाव है। भारतीय वेदान्त का ही अरब, फारस आदि देशों मे प्रचार होने के कारण ही वहाँ की पैगम्बरी-भावना के बीच सूफी-भावना जागी। पैगम्बरी-भावना के समर्थकों के अनुसार 'खुदा' अपना 'शानी' नहीं रखता। अद्वैतवादी भी यह सही कहते हैं-'ब्रह्म की सत्ता ही एक सत्ता है।' श्रीमद्भागवत् में अद्वैतत्त्व का प्रतिपादन करते हुए भगवान, ब्रह्मा जी को उपदेश देते हैं—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सद सत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्॥ २। ६। ३२

अर्थात् सृष्टि के पूर्व में (ईश्वर) ही था-कोई क्रिया न थी। उस समय सत् (कार्यात्मक स्थूल-भाव) न था। असत् (कारणात्मक-भाव) का भी अभाव था। सृष्टि का प्रपञ्च मैं ही हूँ, प्रलय होने पर मै ही बचता हूँ।

कुरान को इन पक्ति में भी अद्वैतवाद की झलक मिलती है— 'अल्लाह के मुख के सिवा सभी वस्तुएं हालिक (नश्वर) हैं, जिधर चाहे तू फिरे अल्लाह (ईश्वर) का ही मुंह मिलेगा।' इसी अल्लाह के रूप को सूफियों ने अद्वैत पारमार्थिक सत्ता के रूप में देखा है।

ब्रह्मज्ञानी मन्सूर ने ईश्वर और जीव के बीच कुछ भेद माना है। वह कहता है—जीवात्मा साधना की चरमावस्था में ब्रह्म में लीन तो अवश्य हो

1—An Out Line of History of Medicine in India-Sir George Birdwood Memorial Lectures by Captain P Jhonston.

जाती है, किन्तु उसकी अपनी विशिष्टता वर्तमान रहती है। जीवात्मा 'अहं ब्रह्माऽस्मि (अनलहक़) का अनुभव तो करती है, किन्तु ब्रह्म में एकदम लीन नहीं हो पाती। इब्न अरबी भी ब्रह्म और जीवात्मा में भेद मानता है। इस प्रकार अनेक व्याख्याएं पायी जाती हैं। किन्तु सभी में एक ही धारा अन्तर्प्रवाहित हुई है, वह है 'एकोऽहं बहुस्यामि' की।

सूफियों मे जो दुःखवाद की भावना पायी जाती है, वह आज से ढाई सहस्र वर्ष पहले भगवान गौतम बुद्ध द्वारा प्रचारित की गयी थी—

Before the Mohamden conquest of India in the eleven century the teachings of Buddha influence in Eastern Persia & Transozania We hear of flourshing Buddhist Monestiries in Balkh, the metropolis of ancient Bactria, a city famous for the number of Sufis, who resided in it [1]

अर्थात् मुसलमानों द्वारा भारतविजय के पूर्व ११वीं शती मे भगवान बुद्ध की शिक्षा का प्रभाव, पूर्वी फारस और ट्रांसजोर्निया पर पड़ चुका था। प्राचीन बैक्ट्रिया की राजधानी बलख में बहुत से बौद्धमठ थे, और वहा पर बहुत से सूफी फ़क़ीर रहते थे।

वही शून्यवाद की भावना प्राचीनकाल से गोरखनाथ की परम्परा से होती हुई आ मिली है। मलिक मुहम्मद जायसी 'शून्य' के विषय में लिखते हैं—

भा भल सोइ जो सुन्नहि जाने।
सुन्नहिं ते सब जग पहिचाने।
सुन्नहिं ते है सुन्न उपाती।
सुन्नहिं ते उपजहिं बहु भाती॥

प्रोफेसर गोल्डजेर का कहना है कि सूफियों ने बौद्ध भिक्षुओं से माला फेरने की भावना ग्रहण की है। यह भली प्रकार से कहा जा सकता है कि सूफीवाद के सिद्धान्त, जहा तक कर्त्तव्य-शास्त्र, आत्मचिन्तन और ज्ञान की भावना से सम्बद्ध हैं, वहा तक बौद्धो का प्रभाव है।[2]

———

1—The Mystics of Islam page 16

२—वही पृ० १७।

सूफी कवियों का प्रेमनिरूपण

प्रेम क्या है ?

प्रेम की परिभाषाएँ एक नहीं अनेक हैं, किन्तु वे सभी अधूरी ही हैं। विश्व की सम्पूर्ण परिभाषाओं की छान-बीन करने पर भी प्रेम की कोई पूर्ण परिभाषा नहीं मिलती है।[1] प्रेम तो एक मानसिक प्रक्रिया मात्र है। प्रेम का सम्बन्ध मन के सूक्ष्मतम भावों से ही अधिक है। यह बुद्धि की परिधि के बाहर है। प्रेम श्रद्धा के क्षेत्र की वस्तु है। यह अनुभव गम्य होता है। मानसिक अनुभूति से सम्बद्ध प्रेम का शाब्दिक निरूपण या चित्रण करना क्या सरल कार्य है? तभी तो कहा गया है कि 'अनिर्वचनीयम् प्रेमस्वरूपम्'।[2] यह तो वह चित्र है जिसका चित्रण करने के लिए न जाने कितने व्यक्ति सगर्व अग्रसर हुए किन्तु वे असफल[3] ही रहे। प्रेम की स्थिति 'अनिर्वचनीय' होते हुए भी, प्रेम की परिभाषा खोजने में प्रेमी सदैव तत्पर रहे, परिभाषा अधूरी ही रही। सभी देशों और भाषाओं में प्रेम की परिभाषा की गयी। हमारे नारद जी प्रेम की परिभाषा करते हैं—

गुण रहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्ध
मानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्।—भक्ति सूत्र

अर्थात् प्रेम निर्गुण और कामना रहित है, यह तो प्रतिपल बढने वाला एक रस है, अत्यन्त सूक्ष्म एव अनुभवगम्य है।

१—उलटी-पलटी करहु निखिल जग की सब भाषा।
मिलहि न पै कहुँ एक प्रेम-पूरी-परिभाषा॥
—सत्यनारायण

२—नारद के 'भक्ति-सूत्र' से मिलाइये 'इश्क़ बासूरत न रूहाएतनी'
—रूमी

३—लिखन बैठ जाकी सबी, गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥
—बिहारी लाल

करुणरस के आचार्य महाकवि भवभूति भी प्रेम के चित्र को उपस्थित करते हुए लिखते हैं—

अद्वैत सुखदु खयोरनुगुण सर्वास्ववस्थासु यद् ।
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरया यस्मिन्नहार्यो रस ।

सूफी-कवि गालिब ने भी अटकलबाजी लगाने की चेष्टा की है। वे कहते हैं कि हृदय में जो प्रिय के लिए जलन सी हो रही है, कदाचित् उसी को प्रेम कहते हैं। कुछ आग सी लगने[1] के भाव-रूप में ही प्रेम का वर्णन कर सके। उर्दू के प्रसिद्ध कवि मीर साहब कब गालिब से पीछे रहने वाले थे, आपने भी 'इश्क़' (प्रेम) की परिभाषा खोजी—

हम तौरे इश्क़ से वाक़िफ़ नहीं हैं लेकिन
सीने में कोई जैसे दिल को मला करे है।

\+ \+ \+

इश्क़ो मुहब्बत क्या जानूँ, लेकिन इतना मैं जानूँ हूँ,
अन्दर ही अन्दर सीने में; मेरे दिल को कोई खाता है।

उर्दू कवियों के अनुसार सम्भवत प्रिय प्राप्ति की लालसा के कारण, होने वाली पीड़ा ही प्रेम माना गया है। यह ऐसा भाव है, जिसका उद्रेक होने से हृदय कोमल हो जाता है, पाषाण द्रवीभूत[2] हो जाते हैं। ममता उत्पन्न हो जाती है, वही भाव परम प्रेम हो जाता है—

सम्यगमसृणितस्वान्तो ममत्वातिऽशयाकिंत ।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधै प्रेमा निगद्यते।

—हरि भक्तिरसामृत सिन्धु

मानव जगत् की भावमय वस्तु- होते हुए भी, प्रेम का सान्निध्य ब्रह्म से है।[3]इस सम्बन्ध की धारणा एकदेशीय न होकर सार्वदेशीय है। अंग्रेज दार्शनिक

१—शायद इसी का नाम मुहब्बत है शेफता।
एक आग सी है दिल में मेरे लगी हुई॥

—ईरान के सूफी कवि पृष्ठ १८१

२—'इश्क़ वह शै है कि पत्थर को दम में आब करे'

३—प्रेम हरी कौ रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होय द्वै यों लसैं, ज्यौं सूरज अरु धूप॥

—रसखान

एवं कवि भी इस बात को मानते हैं कि ईश्वर प्रेममय है।[1] इसी से तो सृष्टि-क्रम में प्रेम की उत्पत्ति सर्वप्रथम मानी गयी है। ईश्वर प्रेमस्वरूप है। सूफी-कवि उसमान ने आदि में प्रेम की उत्पत्ति का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है—

आदि प्रेम विधनै उपराजा, प्रेमहिं लाग जगत सब साजा।
आपन रूप देखि सुख पावा। अपने हियें प्रेम उपजावा॥

कदाचित् इसी कारण से मलिक मुहम्मद जायसी, प्रेम की सर्वव्यापकता के विषय में लिखते हैं—

तीन लोक चौदह खण्ड, सबै परै मोंहि सूझि।
प्रेम छाड़ि नहिं लीन किछु, जौ देखा मन बूझि॥

सूफियों का मूल-सिद्धान्त 'प्रेम'

सूफियों ने जिस वासना के आधार पर आध्यामिकता की सृष्टि की है, उसके मूल में प्रेम-तत्त्व ही है। उसी के आधार पर सूफियों का भव्य आध्यात्मिक-भवन निर्मित है। सूफी, प्रेम को ही धर्म, कर्म, यहाँ तक कि संसार का आधार मानते हैं। उसकी मधुरिमा में उन्हें 'चैतन्य' के दर्शन होते हैं। उनके लिए जीवन तभी सार्थक है, जब कि उनके हृदय में प्रेमाग्नि व्याप्त हो जाय और निरन्तर प्रज्वलित रहे। प्रेम ही उनका मुक्ति-मार्ग है। उसी प्रेम में वे सदैव लीन रहना चाहते हैं। सूफी सम्पूर्ण भू-मडल को प्रेम! प्रेम!! की ध्वनि से गुंजित कर देना चाहते हैं। सूफियों में प्रेम-तत्त्व की इतनी व्यापकता हुई कि कालान्तर में सूफी लोग प्रेम के प्रतीक माने जाने लगे। सूफियों की प्रेम-वृत्ति अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों ही है। सूफी अन्तर्मुखी प्रेम में लीन होकर, जिस प्रकार प्रेम-मूर्ति ब्रह्म का दर्शन 'मूर्च्छितावस्था' में प्राप्त करता है, उसी प्रकार सारी सृष्टि को 'परम-प्रिय' के विरह में पीड़ित लख कर, उस प्रिय के 'विराट स्वरूप' का आभास पाकर अपने मनका उसमें लय करता है। इस प्रकार सूफी साधक के लिए सिद्धान्तत विश्व का कण-कण प्रेममय है। फारस में

1—Love is God and God is Love.
Love! what a volume in a word
—Unknown

In blessed or belighted Love.
—Tapper

में इसका इतना प्रभाव पड़ा कि कुछ व्यक्ति साधारण मानव-जीवन से पृथक होकर प्रेम की 'मस्ती' (तन्मयता) में एक न्यारे लोक में विचरण करने लगे। वे एक निराले क्षेत्र के प्राणी हो गए। वे संसार के सभी ऐश्वर्यों से विमुख होकर उसी 'प्रेमचिन्तन' में मग्न रहने लगे। प्रेम-भावना का यह प्रभाव फारस आदि देशों तक ही परमित न रहा, वरन् इससे भारतीय निर्गुणियों का ज्ञान-मार्ग भी प्रभावित हुआ। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—'पहली शाखा (निर्गुण) भारतीय ब्रह्म ज्ञान और योग साधना को लेकर तथा उसमें सूफियों के प्रेम तत्त्व को मिलाकर उपासना क्षेत्र में अग्रसर हुई।'[1] कुछ लोगों का कहना है कि कृष्ण-भक्ति शाखा पर भी सूफियों का प्रभाव पड़ा है। मीरा के पदों से लक्षित होता है कि उनकी रचना और व्यंजना-पद्धति पर सूफियों का कितना प्रभाव पड़ा है। सूफियों के प्रभाव से कृष्ण-भक्त कवियों में आगे चलकर 'इश्क़ मजाज़ी' इतनी बढ़ी कि उनके काव्य प्रेम-व्यापार के कोष हो गए।[2]'

सूफी प्रेम की प्राचीनता

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो सूफियों की प्रेम-भावना इनकी कोई नयी भावना नहीं है। यों तो प्रेम की सत्ता सार्वभौम ही है, जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है। श्रीमद्भागवत में श्री शुकदेव जी ने भगवद्प्राप्ति के लिए जिस प्रेम का निर्देश किया है, वही थोड़े बहुत अन्तर के साथ इन सूफियों द्वारा गृहीत कहा जा सकता है। बहुत प्राचीन काल से भारत का सम्बन्ध, अरब, फारस आदि देशों से चला आ रहा है, इसका निर्देश किया जा चुका है। हमारे प्रेम की चर्चा आदिमकाल से चली आ रही है, जिसकी उत्पत्ति 'काम' से मानी गई है। काम 'प्रेम' का वैदिक रूप है। यही 'काम' जब 'इश्क' और 'रति' की संकुचित सीमा में परिमित कर दिया गया, तब उसकी महानता को धक्का पहुचा। अब तो प्रेम शब्द उच्चरित होते ही साधारणत लोग दाम्पत्य-प्रेम का स्मरण कर बैठते हैं। प्रेम का वह दिव्यरूप न रह गया जिसका निर्देश कबीर ने 'ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय' में किया है। वैदिक काल में 'काम' हेय नहीं समझा जाता था। काम ही संसृति का मूल कारण माना गया है। काम से ही श्रद्धा

१—देखिए हिन्दी साहित्य का इतिहास १९९९ सं० संस्करण पृ० ८०।
२—देखिए वाग्मय-विमर्श पृ० २६३।

होती है।[1] श्रद्धा का अर्थ होता है—हृदय को धारण करना। प्रेम भी हृदय से है। भारतवर्ष में वसन्तपंचमी के अवसर पर काम की का विधान है। इस उपासना का आधार सौंदर्य एवं आनन्द है। ईसा बारहवीं शताब्दी में सूफीमत के प्रसिद्ध विद्वान इब्न अरबी ने 'काम' की · बड़े रोचक ढग से की है। इस काम की भावना को लेकर सूफियों ने इतना अधिक प्रचार किया, कि आज दिन वह एक प्रकार से फारस से हुई नवीन वस्तु जान पड़ती है। इस भावना का फारसी कवियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा कि आज भी वहां के कवि 'आशिक़-माशूक़' और के रंग में ही रंगे दिखाई पड़ते हैं।

उपर्युक्तविवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सूफियों की प्रेम-भावना भरतीय : । का रूपान्तर है। यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि सूफियों दुखवाद, बौद्धों के दुखवाद से गृहीत हुआ है अथवा उसी का रूपान्तर है। कुछ सम्भव है कि इसी दुखवाद के आधार पर सूफियों ने विरह-तत्त्व का . . किया हो। इन बातों के होते हुए भी सूफियों के प्रेम में जो व्याकुलता, एवं उल्लास आदि की स्थितियाँ पायी जाती हैं, वे उनकी निजी सम्पत्ति जा सकती हैं। मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा वर्णित—

> पिउ सो कहेहु सदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!
> सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुवाँ हम्ह लाग॥

की स्थिति ऐसी विषम हो जाती है कि उसका प्रभाव प्रकृति तक में होने लगता है। अन्यत्र वर्णित हाड़-मांस का गलना, नसों का किंगरी 'रक्त के आंसु[2]' बहना आदि भावनाएँ भारतीयता से मेल नहीं।

सूफियों ने अपनी रचनाओं में ब्रह्म-ज्योति को स्त्री और जीवात्मा को पुरुष में चित्रित किया है। इसके भीतर इनकी साम्प्रदायिक भावना निहित है। स्थल पर भी भारतीय-मार्ग का अनुसरण नहीं किया गया है। इसे अनुसरण उचित नहीं जान पड़ता वरन् का भेद है। फारस आदि देशों में लौकिक

जीवन में पुरुष, स्त्री की ओर आकृष्ट होता है। पुरुष, स्त्री के लिए अनेक यातनाएँ सहता है। स्त्री की ओर से ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होने पाती। प्रिय, प्रिया के हाथ से एक घूंट आसवपान के लिए लालायित रहता है और निरन्तर उसी के ध्यान[1] में रहता है। मजनूँ, लैला के 'हुस्न' (लावण्य) के पीछे दीवाना था, न कि लैला। फरहाद, शीरीं के लिए 'जान' देता था न कि शीरीं फरहाद के लिए जान देती थी। यह फारसी प्रेम की विशेषता है, जिसका अनुसरण प्रेमकाव्यों में किया गया है। लेकिन जीवन की यह भावना काव्य-क्षेत्र में आयी। काव्यों में रहस्य-भावना अन्तर्निहित होने से, यही रूप-साधना-क्षेत्र में भी दिखायी पड़ता है। सूफीवाद की यह अपनी विशेषता है। निर्गुण पंथवादी कबीरदास जी तथा अन्य निर्गुणियों एव भक्तों पर सूफी प्रेम तत्त्व का प्रभाव तो अवश्य लक्षित हुआ किन्तु साधना-मार्ग के लिए भरतीय परम्परा को ही ग्रहण किया। भारतीय परम्परा के अनुसार जीवात्मा 'स्त्री' रूप में परमात्मा (प्रिय) से मिलना चाहती है। अपने को 'राम की बहुरिया' से आगे समझने का साहस यहाँ नहीं किया गया। जब कभी 'राम' का आह्वान किया तो सम्बोधन का शब्द 'भर्तार' ही रखा। हमारे लौकिक जीवन में भी प्रिया ही प्रिय के लिए व्याकुल दिखायी पड़ेगी। प्रेम की यह पद्धति अधिक समीचीन ज्ञात होती है। यह अनुभव-सिद्ध बात है कि स्त्रियों में ही प्रेम करने की शक्ति अधिक होती है, क्योंकि आत्म-समर्पण की भावना जितनी प्रबल स्त्रियों में पायी जाती है, उतनी पुरुषों में नही। ईश्वर-भक्ति के मार्ग में आत्म-समर्पण की बहुत बड़ी आवश्यकता प्रतीत होती है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान न्यूमैन कहते हैं 'यदि आत्मा परमात्मा के प्रेम को प्राप्त करना चाहती है, तो उसे स्त्री रूप में परिवर्तित हो जाना चाहिए।[2]' सम्भवत यही कारण है कि सूफी कवि फारस की प्रेम-पद्धति से परिचित होते हुए भी भारतीय प्रेम-पद्धति की उपेक्षा अपने प्रेमकाव्यों में न कर सके। हिन्दी के सूफी कवियों पर जैसा कि इनकी रचनाओं से प्रकट होता है, भारतीय प्रेम-पद्धति का प्रभाव अवश्य पड़ा था। मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' में जहाँ एक ओर राजा रत्नसेन पद्मावती के प्रेम में—उसे प्राप्त करने में निमित, राज-पाट

१—बवे दारे पश फिलनावर खस्ता खाल
बखाबन्दरश पाये बन्ने खयाल॥ —सादी

2—If this soul is to go into higher spritual blessedness, it must become woman, yes, however manly you may be among men—New man.

छोड़ कर योगी रूप में—प्रेम-पथ पर अग्रसर दिखाये गये हैं, वहाँ दूसरी ओर पद्मावती भी राजा रत्नसेनसे मिलने के लिए व्याकुल चित्रित की गयी है।[1]जायसी सर्वप्रथम पद्मावत में फारसी की प्रेम-पद्धति के अनुसार प्रेमवर्णन में प्रगति लाते हैं, किन्तु आगे चलकर नायक और नायिका दोनों के प्रेम में समान तीव्रता का दर्शन करते हैं, दोनों के ही आदर्श एक दूसरे से मिल जाते हैं—राजा रत्न-सेन की प्रेम-निष्ठता इतनी बढ़ जाती है कि वे एक क्षण के लिए स्थिर नहीं रह सकते और मर्माभूत होने के लिए तत्पर दिखायी पड़ने लगे—

चरिहु चक्र फिरौं हौं डंड न रहौं थिर मार।
होइके भस्म पान संग (धावौं) जहाँ परान अधार।

'धावौं जहाँ परान अधार' में कितनी गूढ़ और मर्मस्पर्शी व्यंजना है। यह तो हुई, राजा रत्नसेन की स्थिति, अब पद्मावती की व्याकुलता पर दृष्टिपात करनी चाहिए—

सो धनि विरह पतंग भइ, जरा चहै तेहि दीप।
कंत न आव भिरिंग होइ, का चंदन तन लीप?

यद्यपि अभी राजा रत्न सेन से पद्मावती का साक्षात्कार नहीं हुआ था तथापि वह गुणश्रवण द्वारा ही राजा रत्न सेन की ओर आकर्षित होती है, और अपने को वियुक्त मानती है, यहीं से भारतीय प्रेम-पद्धति का प्रभाव लक्षित है, जो आगे चलकर अनेक स्थल पर स्पष्ट होजाता है। मझन कवि कृत 'मधुमालती' का नायक मधुमालती के वियोग में व्याकुल दिखाया गया है, किन्तु साथ में मधु-मालती भी पक्षी-रूप में प्रिय की खोज में व्याकुल दिखायी गयी है। यहाँ, यह बतला देना अनुचित न होगा कि प्रेम-वर्णन की प्रचलित चार[2] प्रणालियों में से सूफी कवियों द्वारा चौथी प्रणाली का ग्रहण किया गया। इसके अन्तर्गत प्रेम का आविर्भाव गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन आदि से होता है और नायक या नायिका को संयोग के लिए प्रयत्नवान् करता है। पाश्चात्य (फारसी) और प्राच्य (भारतीय) प्रेम-पद्धति की शैलियों का उपयुक्त समन्वय जायसी प्रभृति कवियों की विशेषता है।

---

[1]—सुनतहिं राजा गा मुरछाई। जानों लहरि सुरुज के आई।
निकसा राजा सिंगी पूरी। छाड़ा नगर मेलिके धूरी॥
पद्मावति तेहि जोग सजोगा। परी प्रेम-बस गहे वियोगा।
कमल भौंर ओही बन पावै। को मिलाइ तन-तपनि बुझावै॥

[2]—देखिए जायसी ग्रन्थावली (प्रथम संस्करण) पृ० ३१-३२ (भूमिका)

सूफियों के वियोग वर्णन में रहस्यवाद, आध्यात्मिकता एव भावगाम्भीर्य का सुन्दर सामजस्य स्थापित किया गया है। रहस्यवाद की प्रधानता के कारण वर्णन ऊहात्मक हो गये हैं।

सूफी कवियों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रेम-काव्यों के नायक अथवा नायिकाए एक मात्र लौकिक-प्रेम की ही व्यंजना करते हुए नहीं पाए जाते वरन् अलौकिक एवं दिव्य-प्रेम की व्यजना करने वाले भी हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि इन कवियों की दृष्टि, विशेष रूप से अलौकिक पक्ष की ओर थी, भले ही लौकिकता का पीछा न छोड़ सके हों। अत इन कवियों ने ईश्वर की ओर संकेत करते हुए, पूर्वराग में ही पूर्ण-वियोग की योजना की है—

जेहि जी देई विरह उपराजा।
निहचै तीन भुवन सो साजा॥
विरह पथ चढी जिउ खोई।
की जीव होइ कि प्रीतम होई॥
बिरहं दवाँ चारहुं दिसि लागा।
जो न जरै सो खरो अभागा॥ आदि

—मंझन

विप्रलम्भ शृगार का 'मान' नामक भेद, वियोग की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं रखता, अतएव इन रचनाओं में इसका एक प्रकार से अभाव सा ही है। कुछेक स्थल ऐसे हैं, जहाँ इस प्रकार की बातों का थोड़ा बहुत समावेश किया गया है, परन्तु वह भी अत्यन्त न्यून मात्रा में। प्रवास नामक भेद की दो स्थितियाँ लक्षित होती हैं। प्रथम, तो नई प्रेमिका की खोज में निकले हुए, नायक की पत्नी द्वारा प्रवास-विरह वर्णन की स्थिति है तथा द्वितीय उस समय उत्पन्न होती है, जब प्रिय विदेश यात्रा को चला जाता है अथवा विच्छिन्न हो जाता है। इस दशा में नयी प्रेमिका एव पत्नी द्वारा किये गये प्रवास-विरह का वर्णन पाया जाता है।

पहले प्रकार के वियोग वर्णन में लौकिक वियोग की ही व्यजना लक्षित होती है। भारतीय परम्परा में इस लौकिक-वियोग-वर्णन के अन्तर्गत 'बारहमासे' का वर्णन भी गृहीत है। वियोगिनी प्रिय के अभाव में प्रत्येक मास में विलाप करती हुई, पायी जाती है। सूफी कवियों ने भी 'बारहमासे' की पद्धति का अनुसरण किया है। नागमती के प्रसिद्ध विरह-वर्णन में 'बारहमासे' का वह

रूप दिखाई देता है, जिसमें वेदना का अत्यन्त निर्मल एवं कोमल-स्वरूप, भारतीय दाम्पत्य-जीवन का आदर्श-मर्मस्पर्शी-माधुर्य, प्राकृतिक वस्तुओं के साथ साहचर्य-भावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का सरल एवं मृदुल रूप का समन्वय किया गया है। स्वर्गीय आचार्य शुक्ल जी ने जायसी के 'नागमती-विरह' वर्णन की अत्यधिक प्रशंसा की है और उसका एक अपना स्थान माना है।

प्रेम में सुख एवं दुख दोनों की अनुभूति-मात्रा, जिस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती है, उसी प्रकार अनुभूति के विषयों में भी विस्तार पाया जाता है। संयोगावस्था में जो, प्रेम की नाना वस्तुओं से आनन्द उद्भासित करता है, वही वियोगावस्था में उन्हीं वस्तुओं से दुख संग्रहीत करता है—इसी दुखद रूप में प्रत्येक मास की उन सामान्य प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का वर्णन कवियों ने किया है। इस प्रकार बारहमासों का वर्णन किया गया है। मुख्यतः बारहमासे में दो[1] बातें देखने की हैं—

१—प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन।
२—दुख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना।

'प्राकृतिक' वस्तुओं एवं व्यापारों का दिग्दर्शन के सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि संस्कृत के प्राचीन कवियों के सदृश्य प्राकृतिक-उपादानों एवं व्यापारों का, विशद् तथा संश्लिष्ट चित्रण इन कवियों द्वारा नहीं किया गया है। यहाँ तो वस्तुओं और व्यापारों की केवल झलक दिखाकर प्रेमी के हृदय-दशा की व्यंजना की गयी है। इन कवियों ने एक प्रकार से संकेत से ही काम चलाया है, फिर भी संकेत सुन्दर हैं—

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा।
साजा विरह, दुंद दल बाजा।
धूम, साम, धौरे घन धाए।
सेत धजा बग-पाँति देखाए॥
खड्ग बीजु चमकै चहुं ओरा।
बूंद-बान बरिसहिं चहुं ओरा॥

—जायसी

१—देखिए जायसी ग्रन्थावली संस्करण पृ० ५३ (भूमिका)

मरद समय अति निरमल राती।
कन्त बाहु सोंह विहरै छाती।
राति निखण्ड चकोर पुकारा।
मानहु काढि सेल उर मारा॥

—उसमान

नवरत पाख कुआर जनावा।
सबै सदेस समीर सुनावा।
सरद रैन ससि सीर अकासा।
सब कहँ परब मोहि बनबासा॥

—मझन

विरह की तीव्रता इतनी अधिक बढ जाती है कि 'पद्मावत' की रानी नागमती विरह-दशा में अपना रानीपन भूल जाती है तथा एक साधारण स्त्री की भाँति कह उठती है—

पुष्य नखत सिर ऊपर आवा।
हौं विनु नाह मदिर को छावा॥

इसके द्वारा हिन्दू-गृहिणी मात्र की सामान्य स्थिति में होने वाले वियोग की यथार्थता का परिचय दिया गया है।

यद्यपि 'बारहमासे' में प्राकृतिक दृश्यों का सश्लिष्ट-चित्रण परम्परागत रूढि के अनुसार नहीं हुआ है, तथापि एकाध स्थलों पर इन कवियों ने अपने सूक्ष्म, निरीक्षण का परिचय दिया है। जायसी ने सिंहल के पनघट[1] का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढग से किया है।

'दु ख के नाना रूपों और कारणों को उद्भावना की अभिव्यक्ति करने में सूफी-कवि विशेष रूप से पहुँचे हुए थे। मलिक मुहम्मद जायसी के विरह-सम्बन्धी उद्गार अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। हिन्दी के महान् समालोचक स्वर्गीय आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुल्क के ने जायसी को विप्रलम्भ-शृगार का प्रधानकवि मान रखा है। वियोग-दशा में दु ख की मात्रा इतनी बढ जाती है कि सुखद एवं आनन्ददायक वस्तुएँ भी दुख देने वाली प्रतीत होने लगती हैं। कष्टप्रद वस्तुओं से यदि कष्ट की उत्पति होती है, तो स्वाभाविक ही है। आज का मनोविज्ञान भी

१—देखिए जायसी ग्रन्थावली प्राचीन सस्करण पृ० १४

यह मानता है कि अन्तःकरण की अनुभूतियों का प्रभाव बाह्यजगत् की वस्तुओं में लक्षित होता है। रानी नागमती वियोग में कहती है—

कातिक सरद चंद उजियारी।
जग सीतल हौं बिरहै जारी॥
चौदह करा चंद परगासा।
जनहुँ जरै सब धरति अकासा॥
तन, मन, सेज जरै अगिदाहू।
सब कहँ चन्द, भयउ मोहि राहू॥

—जायसी

मंझन कवि की नायिका भी कहती है—

मोहि तन बिरह अगिन परजारा।
सरद चाँद मोहिं सेज अगारा॥

ऋतुराज बसन्त भी विरहिणी के लिए दुखदायी हो जाता है, विधना का ऐसा ही विधान है—

ऋतु बसन्त नौ तन बन फूला।
जहँ तहँ भौंर कुसुम रंग भूला॥
आहि कहाँ सो भौंर हमारा।
जेहि बिनु बसत बसत उजारा॥
रात बरन पुनि देखि न जाई।
मानहु दवा दुहूँ दिसि लाई।
अंग सुवास चढ़ै जनु चाटे।
फूल अंगार कली जनु फाटे॥
पुहुप सरासन पनच अलि, मन मथ धरे चढाइ।
पंच बान छिन छिन हने, बिरहिन उर समुझाइ।

—उसमान

बारहमासा के वर्णन में हार्दिक उद्वेग के साथ-साथ प्रेम के संश्लिष्ट-भावों की उत्कृष्ट व्यंजना भी स्वाभाविक हुई है—

राति दिवस बस यह जिउ मोरे।
लगौं निहोर कंत अब तोरे॥
यह तन जारौ छारकै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव॥

—जायसी

इतना ही नहीं 'उसमान' की नायिका तो प्रिय को खोजने के लिए अपने ही शरीर में होली लगाती है—

अब तन होरी लाइके, होइ चहौं जरि छार।
चहुँ दिसी मारुत सगे ह्वै, ढूढ़ौं प्रान अधार ॥

विरह का दुख इतना व्यापक हो जाता है कि विरहिणी नायिका, प्रिय के विरह में प्राकृतिक व्यापारों से अपने मनोगत भावों की तुलना तथा सादृश्य स्थापित करती है, जैसे—

बरसै मघा झकोरि झकोरी।
मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी ॥
—जायसी

सादृश्य भावना का वर्णन कवि-परम्परा से चला आता है—

सपाटलायाँ गवितस्थि वासं।
धनुर्धरं केसरिणं ददर्श ॥
अधित्यकागिव धातुमय्याँ।
लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥
—कालिदास

पहले कहा जा चुका है कि सूफी लोग सिद्धान्तत सृष्टि को वियोगावस्था में मानते हैं, जिसमें अलौकिक पक्ष निहित है। अलौकिक पक्ष की योजना होने के कारण ही सूफी कवियों का विरह-वर्णन 'मजाक' की श्रेणी में जाने से बच गया है। इन कवियों की नायिका बिहारी जैसी 'श्वासों' पर चलने वाली नहीं है। इनके विरह-वर्णन में काव्यार्थ सिद्ध-रूप में न आकर साध्य-रूप में आया है।

संयोग पक्ष

यह कहा जा चुका है कि सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। उक्त दोनों पक्षों पर विचार करने से ईश्वरोन्मुख प्रेम के सम्बन्ध में एक विशिष्ट बात लक्षित होती है कि वियोग पक्ष में अलौकिक तत्त्व-व्यंजना की जैसी प्रवृत्ति पायी जाती है, वैसी सयोग पक्ष में नहीं। अत. स्थूल-रूप से यह कह सकते हैं कि सूफी-प्रेमाख्यानों में सयोग-पक्ष लौकिक-प्रेम के विधान पर दृष्टि रख कर चला है तथा वियोग-पक्ष लौकिक और अलौकिक दोनों ही पक्षों को लेकर चला है। दोनों ही पक्षों का समजस्य बैठाया गया है।

संयोग-पक्ष वर्णन के प्रसंग में, इन कवियों द्वारा वर्णित मार्मिक चित्रों को देखना चाहिये। फ़ारस के काव्यों में प्रेम का सयोग-पक्ष बहुत कुछ स्थिल दिखलाई देता है। किन्तु भारतीय काव्यों में दोनों ही पक्षों की स्थिति समपक्ष बनाए रखने के लिए अन्य विधानों का आयोजन किया गया है। नायक-नायिकाओं के साथ सखा-सखियों की योजना इसी उद्देश्य को लेकर की गयी है। इस योजना के कारण भारतीय-प्रेमकाव्यों में वर्णित सयोग-पक्ष में वह ननापन, शैथिल्य एव रूखापन नहीं दिखाई देता, जो फारसी पद्धति पर रचे गये काव्य में है। भारतीय गाथाओं को ग्रहण करने तथा भारतीय रीति-नीति से थोड़ा परिचित हो जाने के कारण उदार-हृदय सूफ़ी कवियों ने, सयोग-पक्ष वर्णन में कुछ भारतीय प्रवृत्तियों को भी स्थान दिया है। सूफ़ी-कवियों ने उतने विस्तार के साथ तो नहीं परन्तु थोड़े में सयोग-पक्ष का रूप-वर्णन उसी आधार पर किया है, जिसका विधान नख-शिख वर्णन के रूप में किया गया है। भारतीय परम्परा में नख-शिख वर्णन प्राचीन है। हमारे यहा नख-शिख वर्णन दो प्रकार का पाया जाता है—प्रथम नख-शिख तथा द्वितीय शिख-नख वर्णन है। देवताओं आदि का वर्णन नख-शिख के अन्तर्गत जाता है तथा देवताओं आदि से इतर मनुष्यों के रूप-वर्णन शिख-नख के अन्तर्गत। सूफियों के यहाँ सरोपा वर्णन की पद्धति है, जिसे हमारे यहा 'शिख-नख' कहा गया है। उनके यहा यही पद्धति प्रचलित है। भारतीय साहित्य में नख-शिख वर्णन की प्रथा व्यापक थी, यहा तक कि भक्त-कवि महात्मा तुलसीदास जी भी इस से दूर न जा सके। विषय की स्पष्टता के लिए सूफियों (कवियों) द्वारा गृहीत बातों पर विचार करना आवश्यक है। ऊपर कहा जा चुका है कि संयोग-पक्ष के वर्णन में सखा और सखी का विधान किया जाता है। सखियों के चार कार्य बताए गये हैं—मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ तथा परिहास। नायिका का सवारना, शृगार करना आदि क्रियाए मण्डन के अन्तर्गत आती हैं। नख-शिख वर्णन भी इसी के अन्तर्गत लिया जा सकता है। सखियों का कर्त्तव्य-प्रिय से प्रेम करने का उपदेश देना, तथा मान आदि की स्थिति आने पर उलाहना देना, समझा जाता था। हम इसे शिक्षा और उपालम्भ की श्रेणी में ले जा सकते हैं चौथा कार्य परिहार है, जिसमें प्रेम को लक्षित कर सखिया प्रिय एवं प्रेमिका से विनोद करती हैं। विशेष रूप से इस योजना द्वारा सम्भोग शृगार की पुष्टि, हुआ करती है। सखियों के उपर्युक्त चार कारण में में मडन तथा परिहास ही मुख्य माना जाता है। सूफ़ी-कवियों ने, सखियों की योजना तो नहीं की है, किन्तु प्रिय और प्रेमिका के बीच एक मध्यस्थ की आवश्यकता समझी है। यह मध्यस्थ आध्यात्मिक-पक्ष में 'गुरु' रूप में चित्रित हुआ

है। तात्पर्य यह कि सूफी-कवियों ने भारतीय प्रेम-चक्र के बीच सखी अथवा मध्यस्थ के कार्यों को विभाजित कर दिया है। इनकी सखिया प्रेमिका की क्रीड़ा में साथ देने तथा हास-परिहास भी करने वाली, दिखाई पड़ती है। प्रिय और प्रेमी के बीच जो मध्यस्थ के रूप में आता है, वह मुख्य रूप से दूत का कार्य करता हुआ दिखाया गया है। इतना ही नहीं वह सखियों का कार्य करता हुआ, नख-शिख का भी वर्णन करता है। इसके उदाहरण सभी प्रेम-काव्यों में बिखरे हुए हैं। वे सभी स्थानाभाव से नहीं दिये जा सके हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार सखिया ही परिहास करती है, क्योंकि नायिका स्वय इतनी प्रगल्भ नहीं होती कि नायक से परिहास करे। पर इनसूफी-कवियो ने सखी और प्रेमिका दोनों में ही परिहास का योग दिया है। पद्मावती, राजा रत्नसेन की सम्पूर्ण कथा सुनकर राजा से ही परिहास करती है—

हौं रानी तुम जोग भिखारी।
जोगिहि भोगिहि कौन चिन्हारी॥
जोगी सबै छद अस खेला।
तू भिखारि तिन्ह माह अकेला॥
यही भाँति सृष्टि सब छरी।
यही भेख रावन सिय हरी॥

—जायसी

पद्मावती द्वारा किया गया, यह परिहास भारतीय परम्परा के विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त सयोग-पक्ष में उद्दीपनों का भी विधान पाया जाता है। उद्दीपन के भीतर, साक्षात् प्रकृति के अनन्तर सखिया भी मानी गयी हैं। चन्द्र, चाँदनी, वन, उपवन, वाटिका, निर्झर, एकान्तस्थल आदि प्रेम-भाव को उद्दीप्त करने वाले हुआ करते हैं, जिनके अन्तर्गत षट्ऋतु वर्णन भी आता है। सूफी-कवियों की रचनाओं में, सम्पूर्ण सृष्टि को परमज्योति के वियोग में व्याकुल मानते हुए भी, शृगार के लौकिक-पक्ष के सयोग वर्णन में, भारतीय काव्य-परम्परा के अनुसार उद्दीपनरूप में प्रकृति की वैसी योजना न हो सकी है, जैसी होनी चाहिये थी। प्रकृति केवल षट्-ऋतु वर्णन के विधान तक परिमित रह गयी।

उद्दीपन विभाव के दो रूप—बाह्य और आभ्यान्तर माने गये हैं। शृगार में प्रकृति बाह्य-उद्दीपन के अन्तर्गत आया करती है—

पद्मावति चाहत ऋतु पाई।
गगन सोहावन भूमि सोहाई॥

चमक बीजु बरसै जल सोना।
दादुर मोर सबद सुठि लोना॥
रंगराती प्रीतम संग जागी।
गरजे गगन चौंकि गर लागी॥
शीतल बूंद ऊंच चौपारा।
हरियर सब देखाइ संसारा॥

—जायसी (पद्मावत से)

शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों में बाह्य एवं अभ्यान्तर उद्दीपनों की अधिक संभावना नहीं दिखायी देती। अभ्यन्तर-उद्दीपन तो सभी रसों में वर्तमान रहता है। शृंगार के संयोग-पक्ष में अभ्यन्तर-उद्दीपन के भीतर जो चेष्टाएँ आती हैं, उन्हें संस्कृत शास्त्र में 'अलंकार' और हिन्दी में 'हाव कहते हैं।[1] 'पद्मावत' में आए हुए 'बिब्बोक-हाव' का एक सुन्दर उदाहरण नीचे उद्धृत किया जाता है—

ओ हट होसि, जोगि तोरि चेरी।
आवै बास कुरकुटा केरी॥
जोगि तोरि तपसी कै काया।
लागि चहै मोरे अंग छाया॥

—जायसी

सखियों के प्रसंग में नख-शिख का जो वर्णन पाया जाता है, उसे इन हावों से पृथक मानना चाहिये। नख-शिख केवल रूप-वर्णन मात्र है। हावों में प्रेम-भावना के कारण होने वाली शारीरिक चेष्टाओं का ही सन्निवेश पाया जाता है। भारतीय परम्परा में 'नख-शिख' वर्णन के साथ हावों का वर्णन आवश्यक समझा जाता था, किन्तु सूफी कवियों में यह बात नहीं है।

सूफी-रहस्यवाद

मानव जाति जब से अपनी मानवीय विवशता में अथवा प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में किसी एक अलक्षित शक्ति के प्रभाव तथा अस्तित्व की कल्पना करने लगी, तब से रहस्यवाद का बीजारोपण हुआ। रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य-अनुभूति है, जिसके भावावेश में प्राणी ससीम एवं पार्थिव अस्तित्व से 'उस' असीम एवं अपा-

---

१—जायसी ग्रन्थावली की भूमिका पृ० ६३।

थिव 'महा' अस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है। सूफियों का रहस्यवाद भारतीय अद्वैतवाद से सम्बन्ध रखता है। अद्वैतवाद जब चिन्तन क्षेत्र से उठकर काव्य-क्षेत्र में जाता है और कल्पना सवलित होता है, तब वह रहस्यवाद बन जाता है। इस प्रकार से उत्पन्न रहस्यवाद का प्रचार भारत, फारस आदि देशों में तो हुआ ही, किन्तु इसका प्रभाव योरप पर भी पडा। कैथोलिक ईसाइयों में 'हाल' और 'माधुर्य' भाव का जो प्रभाव दिखाई देता है, वह इसी रहस्यवाद का प्रभाव है। वे परम-पुरुष से मिलने के लिए व्याकुल दिखाई देते हैं। इसके मूल में सर्ववाद की भी भावना पायी जाती है—'सर्वं खलु इद ब्रह्म।' ईसाइयों की धर्म-पुस्तक में एक स्थान पर दूल्हा-दुलहिन का वर्णन मिलता है—जिस प्रकार दूल्हा दुलहिन के साथ रमण करता है, उसी प्रकार ईश्वर तुझ में, रमण करे।' 'इसी के आधार पर 'स्वर्गीय दूल्हा' की भावना परिवर्द्धित हुई। रहस्यवाद दो प्रकार का हो सकता है—पहला भावात्मक और दूसरा साधानात्मक सूफियों ने जिस रहस्यवाद का ग्रहण किया है, वह भावात्मक कोटि का है। साधनात्मक कोटि का रहस्यवाद, योग-मार्गी रहस्यवाद भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसका सम्बन्ध योग ही से अधिक है। भावात्मक रहस्यवाद में भावों की प्रधानता है जिसमें मूल-भाव 'प्रेम' है, अत यह प्रेम-मार्गी रहस्यवाद भी कहा जा सकना है। हमारे साहित्य में स्पष्ट रूप से प्रेम-मार्गी और निर्गुण-मार्गी कवियों का विभाजन किया गया है। अत यह मानना पड़ेगा कि सूफी-रहस्यवाद प्रेम को मूल रूप में लेकर चला है। रहस्यवाद का पूरा-पूरा स्फुरण इन सूफी-कवियों में हुआ है। आचार्य शुक्लजी ने लिखा है—'रहस्यवादी कवि-सम्प्रदाय' यदि कोई कहा जा सकता है, तो इन कहानी कहने वाले मुसलमान कवियों का ही।' इस 'रहस्यवादी कवि-सम्प्रदाय' का प्रभाव आगे चलकर कृष्णभक्त कवियों और चैतन्य-सम्प्रदाय पर पड़ा।

सूफी-कवि, प्रकृति में महापुरुप का दर्शन करते हैं। उनके लिए प्रकृति उस परमप्रिय से मिलने के लि शृगार करती है। प्रकृति उसके ज्योति से दीप्त दिखाई पड़ती है—

बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि, ससि नखत दिनहिं ओहि जोति।
रतन पदारथ मानिक मोती॥ आदि

—जायसी

इन कवियों का प्रत्येक पात्र स्थान-विशेष और समय विशेष में संपूर्ण प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता है। इनका सिद्धान्त है, कि बिछुड़ी हुई आत्मा जो, कभी परमात्मा से मिली हुई थी, आज उससे अलग होकर बहुत व्यग्र है। परमात्मा को भी आत्मा से मिलने के लिए व्यग्र माना है, जैसे—राजा रत्नसेन और पद्मावती एक दूसरे के लिए व्यग्र रहते हैं।

इन कवियों ने साधनात्मकपक्ष की भी कुछ बातें ग्रहण की हैं। कई स्थलों पर चक्र, कमल आदि का वर्णन मिलता है। रसायन-शास्त्र का भी प्रभाव पड़ा है।

सूफ़ी कवियों ने, काव्य के अन्त में वर्णित-विषय की आध्यात्मिकता को स्पष्ट कर दिया है। यह पद्धति चित्रावली, पद्मावत आदि प्रेम काव्यों में समान रूप से पायी जाती है [१]।

उपसंहार

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सूफ़ी-कवियों का एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। यद्यपि हिन्दी में मुक्तक रचनाएं हो रही थीं, तथापि प्रबन्ध-प्रेमकाव्यों का एक प्रकार से उस युग में अभाव ही था, कहा जा सकता है। सूफ़ी कवियों ने इस क्षेत्र में प्रशंसात्मक परिश्रम किया और प्रेम के रंग में रंगकर कई प्रबन्ध-काव्य प्रस्तुत किये। यद्यपि इन प्रबन्ध-प्रेमकाव्यों से प्रबन्ध की विविधता का अभाव दूर न हुआ, तथापि हिन्दी साहित्य-भाण्डार परि-पूर्ण तो अवश्य हुआ। सूफ़ी कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों द्वारा जितने भी प्रेमकाव्य लिखे गये हैं, उनमें वर्णन, भावगाम्भीर्य, प्रेम की नाना अन्तर्वृत्तियों आदि का निरूपण एक प्रकार से नहीं हुआ है। अवश्य शुद्ध प्रेम के लक्षण पाये जाते हैं। प्रबन्ध-रचना के लिए अनेक तत्त्वों पर ध्यान रखने के साथ-साथ मुख्य-रूप से कथाधारा की सूत्र-बद्धता एवं पूर्ण-जीवन की अभिव्यक्ति पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। इस कसौटी पर द्वादश-वर्ण-स्वर्ण की भाँति एक मात्र रामचरित मानस को छोड़कर, कोई भी प्रबन्ध-काव्य सूफ़ियों की रचना के समक्ष नहीं ठहर सकेगा, ऐसा कहा जा सकता है। सूफ़ी-कवियों ने प्रेमकाव्यों के भीतर, जिस रहस्य-भावना की योजना की है, वह कबीर प्रभृति ज्ञान-मार्गी संतों की रहस्य-भावना से भिन्न होते हुए भी काव्योपयोगी है। रहस्यवाद एक

१—जायसी ग्रन्थावली, सूरदास एवं काव्य में रहस्यवाद, ग्रंथों के आधार पर।

प्रकार से प्रकृत-रूप में साम्प्रदायिक विचारधारा ही तो है। साहित्य में यह तभी ग्राह्य हो सकता है, जब कि इससे काव्य में विविध-परिस्थितियों के चित्रण में किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो। सूफी कवियों ने रहस्य-भावना के चक्र में न पड़कर, काव्य को दुरुह होने से बचा लिया है। सूफी कवियों के काव्यों में प्रत्येक स्थल पर लौकिक और अलौकिक दोनों ही पक्षों का साथ-साथ दर्शन करना, सम्भव नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि काव्य को दृष्टि में रखते हुए, इन प्रबन्ध प्रेम-काव्यों में रस का पूर्ण सन्निवेश हो सका है। जहाँ कहीं अलौकिक-पक्ष का भाव प्रदर्शित भी किया गया है, उसकी शब्दावली सरलता को लिए हुए है, जिससे समझने में कठिनाई न हो।

सूफी कवि

अभी तक सूफ़ी-कवियों की रचनाओं आदि के सम्बन्ध में सामूहिक रूप से विचार किया गया है, किन्तु अब इन कवियों के जीवन वृत्त से परिचित कराना समीचीन जान पड़ता है, जिसके अन्तर्गत उनके काव्यों का विवेचन भी लक्षित होगा।

क़ुतुबन

सूफी कवियों में शेख़ कुतुबन का स्थान सर्वप्रथम है। ये प्रसिद्ध फ़क़ीर शेख़ बुरहान की शिष्य-परम्परा में से थे। इन्हें जौनपुर के हुसेन शाह (बादशाह)[1] के आश्रित कहा गया है। आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल जी ने इनका समय सम्वत् १५५० माना है। इनकी लिखी हुई 'मृगावती' नामक प्रेमकथा की पुस्तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा को सम्वत् १९५७ में खोज करते समय मिली। पुस्तक देखने से रचना, सं० १५५८ विक्रमी के लगभग की ज्ञात होती है। रचना फारसी की प्रसिद्ध मसनवी शैली में की गयी है। कवि ने बीच-बीच में भारतीय पद्धति का भी अनुसरण किया है। कथा में अस्वाभाविक प्रसंगों का समावेश पाया जाता है, जो तत्कालीन रुचि जान पड़ती है। कथा पूर्णरूप से लौकिक है, किन्तु स्थल-स्थल पर अलौकिकता का भी निर्देश किया गया है। भाषा ठेठ अवधी है। ठेठ अवधी में रचना करने वाले मुसलमान कवियों में, सम्भवत ये प्रथम हैं। रचना श्रुति-मधुर और अलंकृत है। रचना के बीच-बीच में रहस्यात्मक उक्तियों की सुन्दर झलक दिखायी गई है। इन्होंने ब्रह्म को सर्वव्यापी, घट-घट में वासी आदि रूप में देखा है—

'बाहर वह भीतर होई। घर बाहर को रहै न जोई ॥

१—साहि हुसेन आहि बड़ राजा। छत्र सिंघासन उनको छाजा।
पंडित और बुधवंत सयाना। पढ़े पुरान अरथ सब जाना।

—मृगावती

नहीय होत पन्द्रह से सठी। तहीय और चौपाई गंठी।

—वही

कथा—चन्द्रगिरि का राजकुमार मृगावती के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, उसके यहा पहुचता है राजकुमारी उसे दुख देने के लिए उड़कर कहीं अन्यत्र चली जाती है। राजकुमार पहाड़-पहाड़ घूमता है, सयोग से रुक्मिणी नामक स्त्री से भेंट होती है, जो एक राक्षस द्वारा प्रताड़ित थी। उसे बचाता है। उससे विवाह कर लेता है। अन्त में एक दिन मृगावती से मिलन होता है। दोनों स्त्रियों के साथ सुख से रहता है। एक दिन आखेट में राजकुमार घोड़े से गिरकर मर जाता है, रानियां सती होती हैं। कथा दु खान्त[1] है कवि का सिद्धान्त ही है—'दुख बिन होय न प्रीति।'

मंझन

कुतुबन के अनन्तर मंझन का ही स्थान आता है। इनका रचनाकाल सवत् १६०२ माना जा सकता है।[2] 'मधुमालती' नामक प्रेमकाव्य की रचना की है इसकी एक अपूर्ण प्रति नागरी प्रचारिणि सभा, काशी को मिली है। प्रति के आदि एव अन्त के पृष्ठ नहीं हैं, अत. गुरु परम्परा आदि का पता नहीं चलता। कवि का उपनाम मझन स्पष्ट हो जाता है—

मझन 'अमर मूरि जग, विरह जु पावै पास।

कवि ने अपने लिए मलिक शब्द का भी प्रयोग किया है, जिससे उसके मुसलमान-सूफी होने की पुष्टि हो जाती है। कहानी वर्णनात्मक होते हुए भी घटना-प्रधान है। कवि ने नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की भी योजना की है। उसके आगमन से कथा का विस्तार तो हुआ, पर साथ में प्रेम की अनेक अन्तर्दशाओं का भी समावेश, रचना में सम्भव हो सका। मंझन ने फारस के शृगारी कवियों की भाति कल्पना-शक्ति के आधार पर व्यापक चित्रण किया है—

१—मिरगावति औ रुकमिनि लेकै, जरी कुँवर के साथ।
भसम भइजर तिना येक, चिन्ह न रहा गात॥
—मृगावती

२—सन नवसै वावन जब भये। सन वरख कुल परिहर गये॥
तब हम जी उपजी अभिलाषा।
कथा एक बाँधौ भाषा॥ —मधुमालती
सन् हिजरी ६५२ है जो संवत् १६०२ ठहरता है।

तरमयंक ऊपर निसि, पनी आहि कस रीति ।
जानहु ससि औ निसि म्यों, भई सुरति विपरीत ॥

कथा के बीच में नख-शिख आदि का वर्णन काव्य-सौन्दर्य को बढ़ाने में सहायक हुआ है। यह प्रभाव भारतीय है जो निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है —

तेहि पट कच विषधर विष सारी ।
लोटहिं सेज सहज लह-कारी ॥
निरकलङ्क ससि दुइज लिलारा ।
नव खण्ड तीन भुवन उजियारा ॥ आदि

मझन के विरह-वर्णन में वह रूप नहीं पाया जाता, जो आगे चलकर जायसी में पाया गया। इनके विरह में अलौकिक का मेल है। मझन सम्पूर्ण सृष्टि को प्रेम-सूत्र में बंधा देखते हैं। ईश्वर ही सम्पूर्ण चेतना को संचालित करता है। इनका प्रेम-निरूपण भारती पद्धति पर नहीं हुआ है, फारसी प्रभाव स्पष्ट है। कवि ने मनोहर और मधुमालती की शृंगारिक चेष्टाओं का भी वर्णन किया है—

कबहूँ आलिंगन रस देई। कबहूँ कटाक्ष जीव हरि लेई ॥

सूफी-कवि होने के नाते मझन ने विरह-वर्णन के दूसरे पक्ष (ईश्वर) का ध्यान रखते हुए, हृदय के भावों को व्यक्त किया है—

मझन जो जग जनम लै, विरह न किया पाव ।
सूने घर का पहुना ज्यों, आया त्यों जाव ॥

कथा का संक्षेप—राजकुमार मनोहर स्वप्नावस्था में अप्सराओं द्वारा 'मधुमालती' की चित्रशाला में पहुँचाया जाता है। दोनों का साक्षात्कार होता है और प्रेम अंकुरित हो जाता है। राजकुमार पुनः अपने महल में पहुँचाया जाता है। वह व्याकुल होकर मधुमालती की खोज में निकलता है। मार्ग की अनेक कठिनाइयों को सहने के बाद मधुमालती मिलती है।

मधुमालती की माँ को यह बुरा लगता है। मधुमालती शापित होकर पक्षी बनती है। तारा चन्द्र उसका उद्धार करता है। अन्त में दोनों का विवाह होता है। कहानी समाप्त हो जाती है।

आख्यायिका की भाषा चलती हुई होने पर भी जोरदार है।

मलिक मुहम्मद जायसी

ये जायस[1] नगर के रहने वाले थे और सूफी-फकीर शेख मोहिदी[2] के शिष्य ते। इनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह माना जाता है कि इनका जन्म स० १५८५ वि० के पूर्व हो गया था।[3] इनके चमत्कार के सम्बन्ध में जनश्रुतियाँ विख्यात हैं। अमेठी राज्य की घटना से प्राय सभी परिचित होंगे। जायसी ने तत्कालीन समाज की अधिक लोकप्रिय भावना रामकृष्ण की उपासना-को आधार न मानकर, अपने काव्य का आधार सूफी-सिद्धान्त बनाया, जो इनका प्रतिपाद्य विषय था। जैसा कहा जा चुका है कि ये सूफी-फकीर के शिष्य थे, अत सूफी-सिद्धात को अपनाना उचित ही था। इन्होंने सूफीवाद के सिद्धान्तों को हिन्दू धर्म के प्रचलित विवरणों के साथ मिलकर, नये ढँग से हिन्दू-हृदय को वशीभूत करने की चेष्टा की। यह इनकी अपनी विशेषता थी कि कथा का आधार केवल काल्पनिक न मानकर, उसके साथ एतिहासिकता का भी समन्वय किया है। अभी तक मुसलमानों द्वारा लिखी जाने वाली प्रेम-कथाएँ प्राय काल्पनिक ही पायी जाती हैं। पर जायसी ने ने कल्पना के साथ एतिहासिक घटनाओं की याजना कर, अपनी कथा को सजीव बना दिया है। यही कारण है कि जायसी की कथा इतनी लोकप्रिय हुई।

१—जायस नगर धरम अस्थानू।
तहाँ आइ कवि कीन्ह वखानू॥
—पद्मावत

जायस नगर मोर अस्थानू।
नगर क नाव आदि उदयानू॥
—आखिरी कलाम

२—'गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा' —पद्मावत
पा-पाएड गु मोहिदी मीठा —अखरावट

३—सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरभ बैन कवि कहा।
—पद्मावत

नौ सै बरस छतीस जो भए। तब एहि कथा क आखर कहे॥
—आखिरीकलाम

जायसी पर कबीरदास जी का बहुत अधिक प्रभाव लक्षित होता है। डाक्टर ग्रियर्सन साहब का कहना है कि यद्यपि मलिक मुहम्मद जायसी कबीर के सिद्धान्तों से बहुत प्रभावित हुए हैं, तथापि वे हिन्दुओं की कथाओं और हिन्दू-योग-दर्शन से भली भाँति परिचित थे।[1] जायसी ने कबीर के प्रभाव को स्वयं स्वीकार किया है—

ना नारद तब रोइ पुकारा। एक जुलाहे सों मैं हारा॥[2]

कबीर की भाँति जायसी ने भी हिन्दू-मुसलमानों में भिन्नता की भावना दूर कर, एकता-स्थापना करनी चाही। यह कार्य प्रेम के आधार पर हुआ, न कि फटकार से। जायसी ने दोनों सम्प्रदायों के बीच 'प्रेम-बीज' बोने की चेष्टा की, कबीर और जायसी दोनों ने ही 'प्रेम' को ग्रहण किया, किन्तु एक ज्ञानी था तो दूसरा प्रेमी। कबीर लोक-व्यवस्था का तिरस्कार करने वाले थे, किन्तु जायसी ने कभी भी किसी के मत-खण्डन का साहस नहीं किया। जायसी प्रेम-पूर्वक प्रत्येक धर्म की विशेषता स्वीकार करने वाले व्यक्ति थे। जायसी का ज्ञान-क्षेत्र अधिक विस्तृत था।[3] ये इस्माइल इस्लाम की संस्कृति के साथ हिन्दू धर्म से कम प्रभावित नहीं थे। कवि द्वारा सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त की गयी थी, जिस से 'पद्मावत' में विशेषताएं लक्षित होती हैं—

१—सूफी होने के कारण सरल और मनोरंजक रूप में सूफीवाद का निरूपण है।

२—तत्कालीन उपासना की धार्मिक-विचारधारा से विलग प्रेम-कथा के रूप में 'पद्मावती' की कथा का प्रणयन।

३—पद्मावत में धार्मिक सहिष्णुता का निर्माण उच्चकोटि का पाया जाता है।

४—'पद्मावत' भाषा और भाव की सरलता को लिये हुए उत्तम कविता का नमूना है।

५—ग्रन्थ में कोमल भावों, प्रेम, करुणा, भक्ति आदि के साथ ही साथ उग्रभावों—क्रोध, युद्ध, खीझ आदि का भी वर्णन पाया जाता है। अन्य सूफी

1—Modern Vernacular Literature of Hindustan Page 15.

२—जायसी ग्रन्थावली-अखरावट।

३—देखिए इस्लाम संस्कृति के लिए 'अखरावट' पृ० ३५३-३५४ पद्मावत १-१२, भारतीय (वेदान्त) ३६८

कवियों में अधिकतर कोमल-भाव-चित्रण करने की ही परिपाटी पायी जाती है।

जायसी व्यापक तत्त्वदृष्टि वाले थे। उन्होंने सृष्टि को ब्रह्म से वियुक्त चित्रित किया है और विश्व में जहाँ आनन्द है, वहाँ ब्रह्म की सत्ता मानते हैं। जायसी ने शकर-अद्वैतवाद की भाँति आत्मा और ब्रह्म की एकता का ही आभास दिया है। 'पद्मावत' में आध्यात्मिक व्यजना स्पष्ट रूपसे पायी जाती है। छोटी-छोटी घटनाओं का सविस्तार वर्णन करने से, आध्यात्मिकता का पूर्णनिर्वाह करने में बाधा उपस्थित हो गयी है। सम्पूर्ण कथा को आध्यात्मिकता के सूत्र में पिरोया जा सकता है, किन्तु प्रेम-रूप के प्रभाव की तीव्रता के कारण आध्यात्मिकता उसी में अवगाहन करने लगती है। 'पद्मावत' के अतिरिक्त तत्त्वज्ञान-विषयक पुस्तकों—'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' में जायसी ने सहधर्मियों अथवा सहमार्गियों से बढकर तत्त्व-चिन्तन की कुछ बातों का उल्लेख किया है। जायसी का रहस्य-वाद, सूफी-रहस्यवाद है।

जायसी के प्रेम-वर्णन में जो वियोग की प्रधानता है, वह सूफी-सिद्धान्त की विशेषता है। कवि की चित्तवृत्ति सयोग-पक्ष-वर्णन में रमती हुई, नहीं दिखाई पड़ती। जायसी के प्रेम-वर्णन में एकान्तिकता पायी जाती है। काव्य में शब्द-दारिद्र बहुत ही खटकता है। कवि ने कुछ चुने हुए उपमानों का बारबार प्रयोग किया है जैसे—यदि कहीं किसी के रोने का प्रसग आया तो 'बीर बहूटियोंको रँगा दिया। इसमें सन्देह नही कि जायसी बहुश्रुत थे, पर कहीं-कहीं पर भद्दी भूल हुई है—

जो भलि होति लच्छिमी नारी।
तजि महेस कित होत भिखारी॥

ऐसा जान पड़ता है कि जायसी सुनी-सुनाई बातों में कल्पना का मिश्रण कर ऐसी भ्रान्तिया कर गये हैं, क्योंकि यह बात भारतीय धार्मिक जनता में इस रूप में प्रचलित हो, मानना समीचीन नहीं जान पड़ता। इस प्रकार की बातें हिन्दू धार्मिक जनता से अपेक्षित नही है। जायसी द्वारा की गयीं, इस प्रकार की भूलें क्षम्य हैं, क्योंकि इसके मूल मे कोई धार्मिक कारण नही दिखाई पडता है।

उसमान

जायसी के अनन्तर प्रेम गाथाओं की परम्परा चलती आ रही। उसमान, नूर मुहम्मद, निसार आदि ने परम्परागत पद्धति पर रचनाए की। इनमें मौलिकता की मात्रा का अभाव और अनुकरण की प्रधानता पायी जाती है।

गाजीपुर के शेख हुसेन शाह के पुत्र उसमान ने सम्वत् १६६० में 'चित्रावली' की रचना की। उसमान ने जायसी की ही शैली का पूरा पूरा अनुकरण किया है। कहीं-कहीं पर तो पदावली तक उठाकर रख दी है। आपकी कहानी सर्वथा मौलिक और कल्पित है। आपने काबुल, रूम आदि का उल्लेख करते हुए अंग्रेजों के द्वीप का भी उल्लेख किया[1] है—

बल दीप देखा अगरेजा। जहा जाइ, जेहि कठिन करेजा॥

कथा—नायक सुजान आखेट में एक प्रेत-गढ़ में सो जाता है, वहाँ से प्रेत उसे चित्रावली के यहाँ पहुँचाते हैं। दोनों में प्रेम होता है। सुजान अपने स्थान पर पहुँचा दिया जाता है। दोनों ही मिलन के लिए व्याकुल होते हैं। नायक कठिनाइयाँ उठाकर नायिका को प्राप्त करता है, फिर आनन्द है।

जायसी के समान उसमान ने भी षट्ऋतु वर्णन की योजना की है—

ऋतु बसन्त नौ तन बन फूला।
जह तह भौर रग रस भूला॥ आदि

'नख-शिख' वर्णन की योजना भी सुन्दर ढग से की गयी है। विरह की अनेक परिस्थितियों में मानव-भावों के साथ प्रकृति का सामंजस्य दिखाने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। 'काम-शास्त्र' की जानकारी का परिचय कवि ने 'काम-खण्ड' में कराया है, पर वर्णित प्रेम गाम्भीर्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती—

प्रेम गेह अति दुर्गम ऊचा। सहस माह कोउ एक पहूँचा॥

प्रेम की विषम-ज्वाला का भी दर्शन होता है—

को पुगार मजोरन गोवा। कुहकि कुहकि बन कोइल रोवा॥

'कुवर-ढूढन-खण्ड' में कवि के भौगोलिक ज्ञान का परिचय मिलता है।

कथा प्रसग में कवि ने रहस्यवाद का अच्छा पुट दिया है। सामान्य रूप से तो रचना घोर शृगारिक है, किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से परमप्रेम तक पहुचाने वाली भी है। सूफी होने के नाते हृदय की शुद्धता कवि को प्रिय है—

हाजी सग मिलि गये मदीना।
का भा गए जो साफ न सीना॥

१—देखिये—काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'चित्रावली' की भूमिका।

शेख नबी

इन्हें प्रेमात्मक कल्पित कथा-काव्य-कार सूफी कवियों की श्रेणी का अन्तिम प्रधान कवि कह सकते हैं। आपने सम्वत् १६७५ में 'ज्ञान दीपक' की रचना की, जिसमें राजा ज्ञानदीप और देव-यानी की प्रणयकथा सूफी रहस्यवाद की परम्परागत प्रणाली के आधार पर कही गयी है। कथा कल्पित और मौलिक है।

कासिम शाह

सम्वत् १७८८ के लगभग आपने राजा हंस और रानी जवाहिर की कल्पित प्रेम कथा परम्परागत आधार पर लिखी[१]। 'हंस जवाहिर' अथवा 'हंस जवाहर' का वर्णय विषय सुन्दर है। आरम्भ में मुहम्मद शाह की प्रशंसा की गयी है, तत्पश्चात् कुल-परिचय बड़े विस्तार के साथ दिया गया है। पुस्तक की भाषा अशुद्ध, शैली विकृत तथा भाव सारहीन हैं।

नूर मुहम्मद

ये दिल्ली-सुल्तान मुहम्मद शाह के समकालीन थे। सम्वत् १८०१ में इन्होंने 'इन्द्रावती' की रचना की। इस रचना मे जायसी और उसमान की रचनाओं जैसी गम्भीरता नहीं है। इसमें कालिंजर के राजकुमार तथा आगरपुर की राजकुमारी इन्द्रावती की प्रेम कथा वर्णित है। ग्रन्थ की रचना शैली 'मसनवी' है। इसमें प्रेम की अनेक दशाओं का वर्णन पाया जाता है। कथा के बीच में छोटी अन्तरकथा के आने से ग्रन्थ का आकार बढ़ गया है। 'मधुकर' और 'मनिक-खण्ड' की प्रेम कथाएँ अत्यन्त वेदनापूर्ण हैं। इन्द्रावती के समान ही प्रासंगिक कथाओं की नायिकाएँ भी वियोग-पीड़ा से व्यथित होती हैं। कथाएँ इस बात की पुष्टि करती हैं कि प्रिय और प्रेमी दोनों का मिलन निश्चित है। कवि का आदर्श-प्रेम महान् है—

१—ग्यारह सै उनचास जो आना। तब यह प्रेम कथा कवि साना ॥
—हंस जवाहिर

२—मुहम्मदशाह देहली सुल्तान्। × × ×
× × × । कासिम नाम जाति का हीना ॥

३—करौं मुहम्मद शाह बखानू। है सूरज दिल्ली सुल्तानू ॥
—इन्द्रावती

प्रेम-समुद्र अथाह है, बूड़े मिले न अन्त।
तेहि समुद्र में हौं परा, तीर न मिलत तुरंत।

इन्द्रावती द्वारा भेजा गया, प्रेम-पत्र साधारण रूप से लौकिक जान पड़ता है, पर सूफी-सिद्धान्त के अनुसार उसका आध्यात्मिक महत्त्व है—

प्यारे दूर न जानहु मोंही, पावत हौं घट भीतर तोहीं
मुँदे नैन तुहीं मोंटी सूझा, देर भूल में तुम कहँ बूझा॥

ग्रन्थ में भावों की प्रौढ़ता एवं व्यंजना की उच्चता का सर्वथा अभाव है। कवि 'रहस्यवाद' से भी प्रभावित है। भौतिक शरीर को नश्वर और सारहीन समझ कर कवि संसार में ईश्वर की व्याप्ति का दिग्दर्शन कराता है—

'जग भीतर मेंहदी की नाईं।'

'इन्द्रावती' के अतिरिक्त 'अनुराग बाँसुरी' नामक ग्रन्थ का भी पता चलता है, जिसका विषय 'अध्यात्म' से सम्बद्ध है। नीचे के चौपाई से यह भी पता चलता है कि 'नलदमन' की कथा की भी रचना, उन्होंने की थी।[1]

निसार

प्रयाग की हिन्दुस्तानी ऐकडमी को पुस्तकों की खोज करते समय 'युसुफ जुलेखा' नामक एक हस्तलिखित पोथी मिली है, जिसके रचयिता शेख निसार कहे जाते हैं। रचना काल संवत् १८४७ है[2] पुस्तक की रचना—शैली मसनवी है, और भाषा अवधी है। ग्रन्थ में दोहे-चौपाई के अतिरिक्त सोरठा, कवित्त जैसे छंदों का भी व्यवहार किया गया है। यह बात ध्यान देने की है कि पुस्तक की कथा भारतीय न होकर फारसी है। अभी तक जो रचनाएँ पायी गयी है, उनकी कथाएँ भारतीय हैं, किन्तु 'युसुफ जुलेखा' में यह बात नहीं है। कवि की प्रवृत्ति 'नायिका-भेद' की ओर दिखाई पड़ती है। शृंगार की प्रधानता शृंगार रूप में है—

सुनत नार बेकरार ह्वै, डारी गल मँह बाँह।
गहो बाँह चाखो अधर, नार करौ मत नाँह।

१—आगे हिंदी समुद्र तिराना। भाखा इन्द्रावति जो जाना॥
फेर कहा नल दमन कहानी। कौन गनावे दूसरि बानी॥

२—हिजरी सन बारह से बांचा। बरनेउ पेम कथा यह साँचा।
—यूसुफ जुलेखा

इस प्रेम-कथा की कथा वस्तु फारसी तो अवश्य है किन्तु प्रेम-वर्णन में भारतीयता की छाप विद्यमान है—यहाँ प्रेमी के रूप में 'जुलेखा' है—'यूसुफ' नहीं, जैसा कि कथा से स्पष्ट हो जाता है.—

कथा—मिस्र देश की राजकुमारी 'जुलेखा', 'यूसुफ' का दर्शन स्वप्न में करती है। उसके हृदय में यूसुफ के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है, किन्तु, उसे उसका प्रत्युत्तर यूसुफ से नहीं मिलता है। जुलेखा अनेक कष्ट सहन कर यूसुफ को पाती है। थोड़े समय के पश्चात् यूसुफ की मृत्यु हो जाती है। जुलेखा उसके वियोग में प्राण-त्याग करती है।

परम्परा के अनुसार, इन्हों ने भी रचना में अलौकिक सकेतों का विधान किया है। कवि फारसी, अरबी, सस्कृत आदि भाषाओं का जानकार था।

शेख रहीम

ये बहराइच के निकट जोवल नगर के निवासी थे इनके पिता का नाम यार मुहम्मद था।[1] ये उर्दू और फारसी के विद्वान् थे। कवि ने अपनी रचना में अपने जीवन काल का सकेत करते हुए, बतलाया है कि उस समय पंचम जार्ज बादशाह थे और एडवर्ड का देहावसान हो चुका था। यह समय सवत् १९७२ जान पड़ता है, यथा—

> एडवर्ड सतएं जगजाना। भयो सरग मह जिनकर थाना॥
> पचम जार्ज तेहि सुत न्याई। जग मा कीरति जिनकर छाई॥
> तीन बारह सन् उनइस ईसा। बरनू कथा सुमिरि जगदीसा॥

इनकी रचना 'प्रेम-रस' का कथानक काल्पनिक है, जिनमें अलौकिक घटनाओं का विधान है। इसमें प्रेमा और चन्द्र का मिलन दिखाया गया है। यह स्थल बहुत ही मार्मिक है[2]। कथा दुखान्त न होकर सुखान्त है

१—नाम रहीम मोर जगजाना। जोवल नगर जनम अस्थाना॥

× ×

पितुकर यार मुहम्मद नाऊं। वो नबी शेख कहे सब गाऊ॥

२—चन्द्र कहा प्रेमा सुन प्यारे। मोहि सुनाउ यह नीक कथारे॥

× ×

कह प्रेमा सुन लाडली, धरो करेजे हाथ।
हिय फाटे सुन यह कथा, मोसे कही यह जात॥ आदि

जान कवि

यह कवि का नाम न होकर उपनाम है। इनके नाम के सम्बन्ध में कई अटकलबाजियाँ लगायी गई हैं, किन्तु इस पर अभी एकमत नहीं है। अपनी रचना 'छीता' में इन्होंने अपने को गुरु शेख मुहम्मद का शिष्य बताया है। "शेख मुहम्मद पीर हमारो"। इसके अतिरिक्त इन्होंने रसकोष, कनकावति, कामलता, मधुकर-माल्ती, रतनावति आदि रचनाएं की हैं। इनकी प्रेम गाथाओं मे सूफीवाद के साधारण लक्षणों को छोड़कर, कोई विशेष बात देखने को नहीं मिलती है। कवि ने शीघ्रता के कारण कथानक की कुछ घटनाओं को संकुचित कर दिया है, जिससे काव्य का गाम्भीर्य जाता रहता है। प्रेम-तत्त्व निरूपक ऐसी रचनाओं में, इस प्रकार की बातें अवश्य खटकती हैं।

ख्वाजा अहमद

ये प्रतापगढ जिले के बाबूगंज नामक गाँव के निवासी थे। इनका जन्म-समय संवत् १८८७ बतलाया जाता है। पता चलता है कि इन्होंने 'नूरजहाँ' नामक प्रेम-काव्य की रचना की। इसकी रचना मृत्यु के दो मास पूर्व संवत् १९६२ में हुई है। 'नूरजहाँ' की रचना शैली मसनवी है। इन्होंने अपने पूर्व प्रेम-कथा कार जायसी और कासिम शाह को अपना आदर्श माना है—

मलिक मुहम्मद पुरुख सयाना। कथा पदुमिनी कीन्ह बखाना॥
गढ चितउर औ सिंघल दीपा। लिखेउ बखान सो प्रेम समीपा॥
औ कासिम जस दरियावादी। लिखे हंस कै कथा सो आदी॥

'नूरजहाँ' की कथा-वस्तु का सम्बन्ध ऐतिहासिक 'नूरजहाँ' से नहीं है वरन् यह कल्पित जान पड़ती है—

खुतन सहर एक निर्मल देसू। खबर साह तह बसै नरेसू॥
तेहि घर एक बारि उजियारी। नूरजहाँ तेहि नाम पियारी॥

नासीर

ये गाजीपुर जिले के जमनियाँ कस्बे के रहने वाले थे। इनका जन्म काल सवत् १९५० के पूर्व माना जा सकता है। क्योंकि इनकी रचना 'प्रेम दर्पण' में रचना काल "हिजरी तेरह सो पैंतीसा" आया है। अर्थात् सवत् १९७४ में रचना हुई। 'प्रेम दर्पण' का कथानक परम्परागत 'प्रेम कथा' ही है।

—.*.—

ज्ञानमार्गी संत-कवि

यवन-अभियान की सफलता का मूल कारण जो भी रहा हो, किन्तु इसी कारण देश में आतंक का साम्राज्य छा गया था। भारत वासियों ने अपनी ही आँखों के समक्ष मुसलमानों द्वारा मूर्ति-भंग की क्रिया देखी थी, उन्होंने मन्दिरों को मस्जिद रूप में परिवर्तित होते भी देखा था, किन्तु वे इसका कोई प्रतिकार नहीं कर सके। इस सामाजिक दुर्बलता तथा पराजय के कारण भारतवासियों की आस्था मूर्तिपूजा की ओर से धीरे-धीरे हट रही थी। 'सोमनाथ' की घटना ने उनके हृदय से भगवान के 'गज-तारन' रूप को तिरोहित कर दिया। वर्णभेद एव पारस्परिक फूट, जिनके कारण कुछ अंशों में भारतीयों को पराजित होना पड़ा था, भी उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाने लगे। तत्पश्चात् यवन-राज्य की पूर्णरूपेण स्थापना होने पर भी हिन्दुओं की धार्मिक भावनाएं संकुचित सी हुई जा रही थीं और भारतीय सस्कृति एवं अध्यात्मवाद को गहरा धक्का लग रहा था। हिन्दुओं की स्थिति डावा-डोल हो गई थी, और उनका विश्वास सगुणोपासना की ओर से उठा रहा था। पढरपुर के भक्त-शिरोमणि नामदेव की सगुण-भक्ति जनता को आकृष्ट न कर सकी। गौतम बुद्ध के पूर्व वर्ण-भेद की जो अवस्था थी, वह पुन उग्ररूप धारण कर रही थी। हिन्दुओ में चतुर्दिक नैराश्य एव अकर्मण्यता का साम्राज्य छा गया था। उन्हें ऐसे पथ-प्रदर्शकों की आवश्यकता थी, जो इस हीन अवस्था में उन्हें प्रश्रय तथा उत्साहप्रदान कर जीवन की जटिलताओं के बीच उत्थान की ओर ले चले। वस्तुत हमारे देश के लिये वह युग संक्रान्ति का युग था। और सक्रान्तिकाल में हमारी स्थिति बड़ी विपन्न तथा द्विधापूर्ण हो गयी। थी, उद्धार का मार्ग दिखाई नहीं पड़ता था। ऐसे समय में प्रादुर्भाव हुआ—उन सन्तों का, जिन्होंने अपनी अजस्त्र निर्गुणोपासना की प्रेरणा से जनता को उत्साह प्रदान किया और उनमें आध्यात्मिक चेतना भरते हुए, उन्हें उत्थान पथ की ओर अग्रसर किया। इन सन्त कवियों ने अपनी सततसाधना एवं तज्जन्य अनुभूतियों के बल पर आत्म-विश्वास का स्रोत पहचाना ओर परब्रह्म की अलक्षित विराट्सत्ता में विश्वास प्रकट करते हुए जनता को पुन आस्तिक बना कर, उन्ह सम्बल प्रदान किया। जिससे हिन्दुओं मे एक बार पुन शक्ति का प्रसार हुआ। अज्ञान-गर्त में पतित समाज

प्रकाश का वह पुंजीभूत स्रोत दिखाई पड़ा, जिसमें द्विधा को स्थान नहीं, शंका स्वतः संकुचित हो उठी थी और परब्रह्म की अलक्ष्य सत्ता का दर्शन होने लगा। वस्तुतः संक्रान्ति के इस युग में ज्ञान-मार्गी सन्त कवियों ने ही आशा की जाज्वल्यमान शिखा की भाँति अपने विराट-प्रभाव से हिन्दू-समाज की रक्षा की, और अपनी आध्यात्मिक शक्ति के भरोसे उन्होंने मुसल्मानों की भौतिक महत्ता को भी नीचा दिखा कर, उन्हें भी ऐक्य का पाठ पढ़ाया, जिससे हिन्दू मुसल्मानों की पारस्परिक कटुता बहुत कुछ दूर हो गई और वे एक दूसरे के निकट आ गये। इस ऐक्य-स्थापन का सर्वाधिक श्रेय मिला—महात्मा कबीर दास को। भारतीय वेदान्त एवं फारसी सूफीवाद के सुन्दर सामञ्जस्य ने कबीर के सिद्धान्तों में ऐसी शक्ति भर दी थी, जिसकी प्रभाव-शिखा पर हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही समुदाय मन्त्रमुग्ध परवाने की भाँति खिचे चले आए। और एक बार पास पहुँच जाने पर, उस महासंत की महामहिमा वाक्य ने उनमें प्रेम की वह मधुरिमा डाल दी, जिसके अमृत-स्वाद में वे अपने वैमनस्य का प्रतिकार कर उठे।

संत-परम्परा

जिस समय कबीर का आविर्भाव हुआ, उस समय भक्ति की धाराप्रवाहित हो चुकी थी। धारा को अग्रसर करने के लिए पर्याप्त कारण उपस्थित थे। हिन्दू जनता का नैराश्य, भक्ति का आश्रय ग्रहण करने से ही दूर हो सकता था। दूसरी ओर हिन्दू और मुसल्मानों को भी एक करने का प्रश्न उपस्थित था। इन अनुभवों के मूल में भक्ति-मार्ग का विकास गर्भित था। इनका मूलाधार भारतीय ब्रह्मवाद तथा मुसलमानी खुदावाद की स्थूल समानता है, जिसके आधार पर निर्गुण धारा प्रवाहित हुई। रामानन्द जी के शिष्यों में से इस मार्ग पर चलने वाले प्रमुख शिष्य कबीर थे। सेना, धना, पीपा और रैदास भी इस ओर अग्रसर हुए थे। छोटे बड़े और ऊँच-नीच के भेदभाव को दूर करने के लिये रामानन्द जी ने, सबके लिये भक्ति मार्ग प्रशस्त किया। स्त्रियों को भी ऊपर उठाने का प्रयत्न किया गया। रामानन्द की दो शिष्याएं हुईं। एक का नाम पद्मावती और दूसरी का सुरसरी कहा जाता है।

यद्यपि कबीर निर्गुण भक्ति-मार्ग के प्रवर्तक हैं, तथापि भक्त नाम देव इनसे पहले हो चुके हैं। कबीर ने इनकी गणना ज्ञानियों में की है—

जागे सुक उधव अक्रूर हणवत जागिनें लंगूर।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामा जै देव॥

नामदेव पहले सगुणोपासक थे, पर आगे चलकर निर्गुण भक्त हो गए थे।

कबीर के पश्चात् अनेक सत हुए किन्तु सभी पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है, भले ही उनके विचार स्वतन्त्र रहे हों। वे सभी मूल-रूप से कबीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुगामी थे।

सिद्धान्त

ज्ञान-मार्गियों की ईश्वर-चिन्तन की पद्धति भारतीय है। इस चिन्तन के मूल में प्रेम-तत्त्व निहित है—

इश्क अलह की जात है, इश्क अलह का रंग।
इश्क अलह मौजूद है, इश्क अलह का अग॥

प्रिय के चिन्तन में जीवात्मा व्याकुल रहती है। उसकी 'सुरति' में ही परमानंद की प्राप्ति होती है। प्रिय की वाणी सुनने के लिए सन्त विह्वल रहता है। वह वाणी को ससार की न्यारी वस्तुओं में स्थान देता है—

वाणी मेरे पीउ की न्यारी जो ससार।
निराकार के पारथैं तिन पारहु के पार॥

—प्रगति वाणी

इसी वाणी को 'अनहद नाद' की संज्ञा दी गयी है। सन्त के लिए जगत् में ब्रह्म की सत्ता ही, एक मात्र सत्ता है। ब्रह्म ही सब कुछ है। ब्रह्म ही से सबकी उत्पत्ति होती है और उसी में लय भी होना पडता है।

पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया विलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ॥

ब्रह्म इस 'ससार' में सर्वत्र व्याप्त है—

'खालिक खल्क, खलक में खालिक सब जग रह्यो समाई।'

ज्ञान-मार्गियों ने ससार की नश्वरता को स्वीकार करते हुए, दृश्य-जगत् को माया-जन्य, भ्रान्ति माना है। विश्व, स्वप्न के समान अस्तित्व—हीन है—

ससार ऐसा सुपिन, जैसा जीवन सुपिन समान।

महात्मा बुद्धदेव के दु खवाद से भी ज्ञान-मार्गी कम प्रभावित नहीं हैं। यह दुख माया की मोह-लीला है। माया प्रेरित दुख जो समझना भ्रान्ति है। यह माया सन्तों की माया है, जो भक्तों की माया से सर्वथा भिन्न है। भक्तों की माया रूप-रूपा है किन्तु सन्तों की माया का स्वतन्त्र अस्तित्व है। यहाँ माया

संत, काम, क्रोध, मोह, मदादि को माया की सन्तान मानता है। ये ही मनुष्य के अध पतन के कारण हैं। इनसे सावधान रहना चाहिए—

पच चोर गड मझा, गड लूटै दिवस अरु संझा।
जौ गढपति मुहकम हो, तौ लूटि न सकै कोई॥

ज्ञानमार्गी, कर्मकाण्ड को पाखण्ड मानता है और उसे ही भगवद्भक्ति में बाधक मानता है। परमात्मा की भक्ति मनसे होती है। आत्म-शुद्धि ही इस भक्ति-पक्ष के लिए आवश्यक है। 'कर का मनका छाँडि के, मन का मनका' फेरने से ही ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।

जैसा ऊपर कहा गया है कि ज्ञान मार्गियों के तत्त्व-चिन्तन में 'प्रेम' निहित है। बात यह है कि ज्ञान-मार्ग के अनुसार निर्गुण-निराकार-ब्रह्म, शुष्क-चिन्तन का विषय है। कबीर के प्रयास से शुष्कता दूर हुई, पूर्णरूप से नहीं, और प्रेमपूर्ण चिन्तन का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस प्रेम के दो पक्ष हैं—लौकिक और अलौकिक। अलौकिक पक्ष मे प्रेम का अर्थ है बाह्य-जगत से मनोवृत्तियों का एकत्रीकरण करके अन्तर्जगत् में लीन करना। लौकिक पक्ष में प्रेम का अर्थ सभी जीवों के प्रति दया का व्यवहार करना है। प्रेम की प्राप्ति के लिए आत्मोत्सर्ग की बहुत बड़ी आवश्यकता बतायी गई है। आत्मोत्सर्ग से प्रेम अमृत तुल्य हो जाता है—

'नीझर झरै अमीरस निकसै तिहिं मदिरावलि छाका।'

प्रेमासव का पान करने से मनुष्य में जीवन पर्यन्त के लिए खुमारी आ जाती है। तन-मन की सुध भूल जाती है। परमानंद की अवस्था प्राप्त हो जाती है। आत्म-विस्मृति से ब्रह्म के साथ तादात्म्य हो जाता है। ब्रह्मज्ञान में, मैं-तू का पृथक आभास नहीं मिलता—

हरि रस पीया जानिए, कबहू न जाय खुमार।

× ×

तू-तू करता तूं भया तुझमें रही न हूं।

ज्ञान-मार्ग में ऊँच और नीच में कोई भेद नहीं है, सभी पंच-भूतात्मक जीव हैं—

एक बूंद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक जोति थैं सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा॥

ज्ञान-मार्गियों की साधना-पद्धति, योग-पद्धति पर चली है किन्तु, यह कोई आवश्यक नहीं है कि मनुष्य गार्हस्थ्य-जीवन से दूर जाकर ही साधना कर

सकता है। कबीर तो गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए भी सिद्ध हो गये। परम्परागत हठयोगियों का प्रभाव इस सम्प्रदाय पर पड़ा और प्राय उनके सभी प्रतीक गृहीत हुए। नाड़ियों, चक्रों आदि का जो उल्लेख पाया जाता है, वह गोरखपथी हठयोगियों का ही प्रभाव है।

रहस्यवाद

रहस्यवाद का विवेचन अत्यन्त मनोरञ्जक होते हुए भी कठिन है,[1] इसके मूल में अज्ञात शक्ति के प्रति जिज्ञासा काम करती है। मनुष्य इसका अनुभव प्राचीन काल से करता चला आ रहा है। रहस्यवाद को, हम दिव्य और अलौकिक शक्ति से जीवात्मा की अन्तर्निहित प्रवृत्ति का शाश्वत सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रकाश रूप में स्वीकार कर सकते हैं। यह शाश्वत-सम्बन्ध प्रेम की भूमि पर होता है। इस सयोग को दिव्य-सयोग कहते हैं। प्रेम की इस सयोगावस्था में 'मन' नामक आन्तरिक इन्द्रिय ही सभी इन्द्रियों का व्यापार करने लगती हैं। फारसी कवि शमसी तबरीज लिखता है—

> ब यादे बज्मे विसालश् दर आरज् ए जमालश,
> कुतादा वे खबरान दजे आ शराब किदानी।
> चि खुशबू अद कि बबूयश बर आस्तान एकू यश
> बराये दीद ने रूयस शबे बरोज़ रसनी।
> हवासे जुस्तए खुद रा बनूरे जाने तो बर अफरोज ॥

(उसके मिलन और सौन्दर्य की अभिलाषा में मदिरा पीकर बेहोश पड़े हैं, अच्छा होता यदि उसके द्वार पर ही मुँह देखने को मिलता। तू अपनी इन्द्रियों को जगमगा दे।)

1—The most essential part of mysticism cannot of course, ever pass into experience × × most liberal sense ineffable × × × who penetrate can understand

—The Oxford Book of English Mystical Verses.

आत्मा, परमात्मा के समक्ष आत्म-समर्पण, किसी स्वार्थ भावना से नहीं करती वरन् हृदय की प्रेम की पूर्ति के लिए ही आत्मसमर्पण करती है। आत्मसमर्पण के मार्ग में साधक सर्वप्रथम उस दशा को प्राप्त होता है, जब ब्रह्म उसे आश्चर्य चकित कर देता है। अर्थात् साधक भौतिकता से दूर जाकर, ब्रह्म को आश्चर्य चकित होकर देखता है। द्वितीय अवस्था में प्रकृति स्वरूपा आत्मा आदिपुरुष में लीन हो जाती है और उसके समक्ष संसार की कोई वस्तु ही नहीं ठहरती—

"It is true that in the Experience of Union with God, there is no room for a mediator. Here is the absolute Divine unity."[1]

अर्थात् यह सत्य है कि परमात्मा के साक्षात्कार होने के अनुभव में साधक के लिए कोई स्थान ही नहीं रहजाता है। एकाकार हो जाता है। वास्तव में यही ईश्वरीय एकता है।

तृतीय अवस्था वह अवस्था है जब आत्मा में ही परमात्मा का अनुभव होने लगता है। रहस्यवादियों की अनुभूति व्यक्तिगत हो जाती है। साधारण व्यक्ति के समझने योग्य नहीं होती। यही कारण है कि 'मसूर' ने अपनी अनुभूति को व्यक्त करने की सतत चेष्टा की, किन्तु असफल रहा।

यह तो हुई रहस्यवाद की साधारण चर्चा। अब संतों के रहस्यवाद पर विचार करना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि सन्तों के रहस्यवाद पर भारतीय अद्वैतवाद और फारसी सूफीवाद का प्रभाव पड़ा है। सूफीवाद पूर्ण रूप से 'प्रेमतत्त्व' को ही लेकर चला है, जिसके आधार पर 'सूफी-रहस्यवाद' का सृजन हुआ। किन्तु निर्गुणियों के रहस्यवाद में 'प्रेमतत्त्व' के साथ ही साथ नाथ-पंथियों की रहस्यात्मक भावना का भी पुट है। सूफी-रहस्यवाद में ब्रह्म प्रियतम रूप में है तो संतों के रहस्यवाद में ब्रह्म-चिन्तन 'प्रिय' रूप में किया जाता है। यहाँ भारतीयता की छाप स्पष्ट रूप से लक्षित हो जाती है। नाथ पंथियों तथा भारतीय अद्वैत के प्रभाव से इस रहस्यवाद में 'ज्ञान' तत्त्व गृहीत हुआ। परमेश्वर के साथ एक सम्बन्ध स्थापित न करके अनेक सम्बन्ध-माता, पिता, सखा आदि स्थापित किया गया। जगत् के नाना रूपों को परमात्मा का स्वरूप माना है।[२] ब्रह्म से वियुक्त

1—The Idea of Personality in Sufism.

२—'बाप राम आया अबहूँ सरन तिहारी।'

'हरि जननी मैं बालिक तोरा।'

होने के नाते सृष्टि प्रज्वलित है।[1] निर्गुणियों का रहस्यवाद भावात्मक न होकर साधनात्मक है, अत यहाँ कल्पना की उतनी प्रचुरता नहीं है, जितनी सूफी रहस्यवाद में। इसी से सन्त—कवियों द्वारा उपस्थित किये गये चित्रों का क्षेत्र परिमित ही रहा। परमात्मा के वियोग आदि का चित्र रूपकों द्वारा उपस्थित किया गया है। ये रूपक परिमित ही हैं। एक बार इन रूपकों को समझने से सर्वत्र अर्थ स्पष्ट होता जायगा।

हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद से प्रभावित होने के कारण कुछ सांकेतिक शब्दों—चद, सूर, नाद, बिन्दु, अमृत, औंधा कुँआँ आदि के आधार पर अद्‌भुत-अद्‌भुत रूपक बाधे गये हैं—

सूर समाना चद में दहूँ किया घर एक।

× × ×

आकासे मुख औंधा कुआ पाताले पनिहारि।

× × ×

सन्तों ने साधना-मार्ग में गुरु की प्रतिष्ठा गायी है। 'गुरु बिन होहिं न ज्ञान' चरितार्थ होता है। सन्तों पर यह प्रभाव दो ओर से पड़ा। पहला प्रभाव तो हठयोगियों का था। हठयोगियों के यहा गुरु की बड़ी प्रतिष्ठा गाई गई है। बात यह है कि साधना-मार्ग की यौगिक क्रियाएँ, बिना गुरु अथवा किसी व्यक्ति द्वारा बताये, नहीं सीखी जा सकतीं। इन क्रियाओं को बताने वाला व्यक्ति निपुण होना चाहिये। वही व्यक्ति गुरु रूप में माना जाता है। दूसरा प्रभाव सूफियों का था। सूफी भी चिन्तन के मार्ग में पीर (गुरु) को तत्त्व द्रष्टा मानते हैं। सन्तों ने गुरु को सद्‌गुरु की सज्ञा प्रदान की है।

संतों के इस रहस्यवाद का, जिसके अधिष्ठाता कबीरदास थे, प्रभाव आने वाले कवियों पर भी पड़ा। बगला के कवि रवीन्द्र को भी ऋणी होना पड़ा। उन्हें अपने रहस्यवाद का बीज इसी पूर्वोक्त रहस्यवाद में मिला था। यह सत्य है कि आवरण या पहनावा पाश्चात्य था। यह रहस्यवाद आधुनिक कवियों के रहस्यवाद से भिन्न था।

१—अम्बर कुनाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि पै गोविंद बीछुटे तिनके कौण हवाल॥

× × ×

काहे री नलिनीं ! तू कुम्हिलानी, तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में बास जल में नलिनी तोर निवास।
ना तलि तपयि न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लाग।

कबीर

इसमें सन्देह नहीं कि कबीरदास ही सर्वप्रथम मुसलमान हैं, जिन्होंने अपनी अभिरुचि ज्ञान-मार्ग की ओर दिखलायी। ज्ञान-मार्ग का एक प्रकार से सूत्र-पात नामदेव से ही मानना चाहिये।[1] नामदेव महाराष्ट्र के रहने वाले थे। इनकी रचनाएं एक ओर तो सगुन भक्ति-सम्प्रदाय की अनुवर्तनीय हैं और दूसरी ओर निर्गुण पथ के ढग पर चलने वाली हैं। इस निर्गुण भावना के मार्ग को प्रशस्त एवं सुव्यवस्थित करके, अमर बनाने का श्रेय कबीरदास ही को मिला। इनका आविर्भाव जेठ सुदी पूर्णिमा विक्रम सवत् १४५६ को माना जाता है। कबीर की रचनाओं पर भारतीयता और सूफीवाद का बराबर प्रभाव पड़ा है। इन्होंने स्थान-स्थान पर 'राम' शब्द का प्रयोग किया है किन्तु ये दशरथ-पुत्र राम नहीं थे वरन् व्यापक ब्रह्म थे।[2]

साधना-मार्ग में प्रेम की प्रधानता होने से विरहावस्था का प्रादुर्भाव होना अनिवार्य ही हो जाता है। प्रेमी, प्रिय की प्राप्ति के लिए व्यग्र होता है और उसकी प्राप्ति न होने तक वह विरहाग्नि में जला करता है। विरह में प्रज्वलित होते होते जीवात्मा आनन्द का अनुभव करने लगती है। विरह में ही आनन्द का अनुभव हो जाता है—

"Sweetest Songs are those that tell us the Saddest thought" अर्थात् वही गीत अत्यन्त मधुर है जो हमें महान दुःख का स्मरण दिलाये।

कबीर को भी इसी विरह में आनन्द मिलता है। उसे सम्राट माना है—

> बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुल्तिान।
> जिस घटि बिरह न सचरै, सो घट सदा मसान॥

विरह सम्राट ही नहीं है, वरन जिस हृदय में विरह का सचार न हो वह श्मशान सदृश्य है। कबीरदास जी तो सदैव अपने को उसी विरहवाण से आहत् रखना चाहते हैं—

> जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
> तिहि सरि अजहू, मारि, सर बिन सच पाऊ नहीं॥

१—देखिए हिन्दी साहित्य का इतिहास (शुक्ल जी)

२— दशरथ-सुत तिहु लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना॥

कबीर के अनुसार सच्चा साधक वही है, जो विरह-सर्प डसित होने पर भी व्यथित न हो—

विरह भुवगम पैठि करि, किया कलेजे घाव।
साधू अंग न मोड़िहै, ज्यूं भावै त्यूं खाव॥

वियोगावस्था में अश्रु-प्रवाह होने से ही प्रिय का सान्निध्य उपलब्ध हो सकता है। रोने में ही परमप्रिय की प्राप्ति होती है।—

कबीर हसणा दूरि करि, करि रोवण सों चित्त।
बिन रोयाँ क्यू पाइए, प्रेम पियारा मित्त॥

संयोगावस्था की अवस्था में वही आनन्द दिखाई पड़ता है, जो वियोगावस्था में।

सूफी मत में 'इश्क़ हक़ीक़ी' का प्रमुख स्थान है। जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है कि कबीर सूफीवाद से प्रभावित थे, अत विरह की भावना सूफियों की देन कही जा सकती है। कबीर ने भी 'अनल हक़' का अनुभव किया था—ऐसा प्रतीत होता है। ईश्वर से मिलने के लिए यह आवश्यक है कि भक्त अपने हृदय में प्रेम को स्थान दे। इतना ही नहीं रहस्यवादी होने के कारण कबीर ने प्रेम की प्रधानता को स्वीकार किया है। कबीर रामानन्द के शिष्यों में से भी थे। रामानद जी भी 'प्रेम' भगवद्प्रेम की शिक्षा देते थे। इन दो परिस्थितियों के बीच 'प्रेम' अकुरित ही नहीं हुआ, वरन् वृक्ष रूप में पल्लवित भी हुआ। यही कारण है कि कबीर दास जी ने स्थान-स्थान पर प्रेम की व्यंजना करायी है। सूफियों की अन्योक्ति द्वारा ईश्वर-प्रेम-व्यंजना कराने वाली पद्धति का सहारा लिया है—

कुमुदनी जलहरि बसै, चदा बसै अकास।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास।

—सनेह कौ अंग से

कबीर की प्रेम-व्यंजना में ऊहा को उतना स्थान नहीं मिला है, जितना सूफी कवियों ने अपने काव्यों में दिया है। हाड़-मास गलाने की वह धूम, यहाँ नहीं दिखायी पड़ती, जो जायसी में लक्षित हुई है।

इगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया।
सो चादर सुरनर मुनि ओढी, ओढि कै मैली कीन चदरिया॥

उपर्युक्त पद से यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर पर सूफी प्रभाव के साथ ही साथ योगियों का भी प्रभाव पड़ा। इस पद में प्रयुक्त, इगला, पिंगला आदि नाड़ियों का वर्णन साधनात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत मानना चाहिए।

अध्याय के आरम्भ में सन्तों के सिद्धान्त, रहस्यवाद आदि की जो चर्चा की गयी है, वे सभी कबीर दास जी के पक्ष में लागू हैं। सन्तों के सिद्धान्त आदि का आधार कबीर के सिद्धान्त आदि ही है।

रज्जब जी

इनका आविर्भाव काल सं० १७१० माना गया है। कुछ विद्वानों ने इनके मुसलमान होने में सन्देह किया है, किन्तु इन दो बातों के आधार पर ही ये मुसलमान सिद्ध होते हैं। प्रथम इनका नाम मुसलमानी ढंग पर है। द्वितीय इनकी कविता में फारसी और उर्दू के शब्दों की प्रचुरता है। ये दादूराम के शिष्य माने जाते हैं। 'रज्जब जी की बानी' नामक पुस्तक में साखियाँ संगृहीत हैं। इनकी रचना में स्थान-स्थान पर गुरु-भक्ति, ईश्वर-भक्ति आदि विषयों की चर्चा पायी जाती है। विरह की प्रधानता को इन्होंने भी स्वीकार किया है—

दरद बिन क्यों देखिए, दर्शन दीन दयाल।
रज्जब विरह वियोग बिन, काध मिले सो लाल॥

परब्रह्म को ही एक मात्र स्नेही माना है और उसी का स्मरण करने को कहते हैं—

'रज्जब, राम रहीम कहि, आदि पुरुष करि याद।
सदा सनेही सुमिरिये, जनम न जावे बाद॥

यारी साहब

इनका आविर्भाव काल सं० १७२५ से १७८० के बीच में माना जाता है। ये बीरू साहब के शिष्यों में से थे। इनकी रची हुई किसी पुस्तक का पता नहीं चलता। वेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'सतबाणी' ग्रन्थ माला में इनकी थोड़ी सी बानियाँ संगृहीत हैं। आभ्यान्तरिक चिन्तन के सम्बन्ध में कहते हैं—

विरहिन मन्दिर दियना बार।
बिन बाती बिन तेल जुगुति सो, बिन दीपक उजियार।
प्रान प्रिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज संवार॥
सुखसन सेज परम तत रहिया, पिय निरगुन निरकार।
गावहु री मिलि आनन्द मंगल, यारी मिलिके यार॥

इनकी रचना में कबीर जैसी जटिलता नहीं है। सरलता को लिए हुए सरस है। पर-ब्रह्म का चिन्तन प्रिय रूप में ही किया है—

हौं तो खेलो पिया सग होरी।
दरस परस पतिवरता पिय की छवि निरखत भई बौरी॥

हरि-प्रेम की प्रीति, दिवे-दिवे किस प्रकार बढती है, जिससे विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होती है और भौतिकता का नाश हो जाता है, की व्यजना कैसे सुन्दर ढग से यहाँ हुई है—

दिन-दिन प्रीत अधिक मोहि हरि की।
काम, क्रोध, जजाल भसम भयो विरह अगिनि लगि धधकी।
धुधुकि-धुधुकि सुलगति अति निर्मल झिलमिल झिलमिल झलकी॥

कहा जाता है कि इन्होंने 'अलिफ-नामा' में प्रत्येक अक्षर के आधार द्वारा ब्रह्मज्ञान का निरूपण किया है। 'कवित्त' और 'झूलनो' में सरसता पायी जाती है। झूलनों में सूफी पारिभाषिक शब्दों, मलूकत आदि की व्याख्या की गयी है। साखियों में 'ज्योति स्वरूपा आत्मा' का सविस्तार वर्णन किया गया है—

जोत सरूपी आतमा, घट-घट रही समाय।
परम तत्त मन भावनो, नेक न इत उत जाय॥ आदि

दरिया साहब

दरिया साहब के नाम से दो व्यक्तियों का उल्लेख पाया जाता है और दोनों ही सन्त थे। दोनों व्यक्ति समकालीन थे। एक विहार के रहने वाले थे तो दूसरे मारवाड़ के। प्रस्तुत दरिया साहब विहार के रहने वाले थे। इनका जन्म धुनिया कुल में सं० १७३३ वि० हुआ था। इन्हें कबीर साहब का अवतार माना जाता है। 'दरिया-सागर'[१] नामक ग्रन्थ में इनकी वानियाँ संगृहीत हैं। 'ज्ञान-दीपक' नामक ग्रन्थ भी ज्ञान सम्बन्धी चर्चा का प्रधान ग्रन्थ है। दरिया सागर की रचना शैली बहुत कुछ 'मानस' के शैली के समान है[२]। इस ग्रन्थ में निर्गुण-ब्रह्म का ही निरूपण किया है, यथा—

आदि अनादि मेरा साईं।
दृष्टि न मुष्ट है अगम अगोचर।
यह सब माया उनकी माई॥ आदि

१—दरिया सागर (वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित)
२—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

आपने भी ब्रह्म-साक्षात्कार करने के लिए तन-मन अर्पण करने की बात कही है—

> आगे बढ़े फिरे नहीं, यह सूरा की रीति।
> तन मन अरपैं राम को, सदा रहै अघ जीति॥

इनके राम वही निर्गुण सन्तों के राम, ब्रह्म हैं। इन्होंने भी ब्रह्म को प्रिय रूप में ही देखा है—

> जब मेरे पिउ से मनसा दौरी।
> सतगुरु आन सगाई जोड़ी॥
> तब मैं पिउ का मंगल गाया। आदि

विरह-वर्णन की प्रथा कुछ कम हो चली थी। थोड़ी बहुत वियोग की व्यंजना तो अवश्य यत्र-तत्र बिखरी है, किन्तु उसका व्यापक रूप सामने नहीं आता।

दरिया साहब

ये मेवाड़ के रहने वाले थे। इनका आविर्भाव सं० १७३१ वि० में हुआ था। ये सिद्ध पुरुष थे। इन्होंने भी उपर्युक्त दरिया साहब की भाँति साखियों की रचना की है। इन्होंने 'राम' (ब्रह्म) को ही आराध्य माना है।[1] कबीरदास जी की भाँति उल्टवासियों का भी प्रयोग किया है।

शेख फरीद

इनका जन्म सं० १८३० में हुआ था। ये मुसलमान सन्तों में श्रेष्ठ कहे जाते हैं। इनका एक और नाम 'शक्कर गंज' पाया जाता है। इस नाम के सम्बन्ध में एक कथा है। एक बार इनकी माता ने इनसे कहा कि यदि तुम प्रार्थना करोगे तो तुम्हें शक्कर मिलेगी। प्रार्थना करने के बाद इन्हें थोड़ी शक्कर मिली। माता ने चीनी आसन के नीचे से निकाल कर दी थी। एक दिन माता की अनुपस्थिति में प्रार्थना करने के बाद जाकर आसन उठाते हैं, तो बहुत सी शक्कर मिली। माता ने जब सुना तो इनका नाम शक्करगंज (शक्कर-निधि) रखा।

१—नमो राम परब्रह्म जी, सतगुरु सन्त अधारि।
जन 'दरिया' बन्दन करै, पल पल बारू बारि॥

इनके कुछ पद ग्रंथ साहब में पाये जाते हैं। इनकी कविता में ईश्वर-साक्षात्कार विषयक आकांक्षा का आधिक्य है।[1]

दीन दरवेश

इनके सम्बन्ध में कोई विवरण प्राप्त नहीं है। कविताओं को देखने से पता चलता है कि ये कविताएं सम्वत् १८७५ विक्रमी में रची गई होंगी। इनका दीन दरवेश नाम बाद को पड़ा। ये गुजरात के रहने वाले थे। सेना में मिस्त्री का काम करते थे। जन-श्रुति है कि जब इनका हाथ शत्रु-गोले से नष्ट हो गया तब ये दरवेश (फकीर) की भाँति घूमने लगे और विख्यात हो गए। कुछ लोगों का कहना है कि इन्होंने 'दीन-प्रकाश' और 'भजन-मड़ाका' नामक ग्रन्थों की रचना की थी, किन्तु ये पुस्तकें प्राप्त नहीं हैं। इनकी कुण्डलियां देखने में आयी हैं—

माया माया करत है खरच्या खाय्या नाहिं।
सो नर ऐसे जाहिगे ज्यों बादल की छाहिं॥
ज्यों बादल की छाहि जायगा आया ऐसा।
जाना नहिं जगदीश प्रीति कर जोड़ा पैसा।
कहे 'दीन दरवेश' नहि कोइ अम्मर काया।
खरच्या खाया नाहि करत नर माया माय॥

इसमें एक प्रकार से नीति की प्रधानता पायी जाती है। ब्रह्मोपासना का पूर्व कथित रूप नहीं लक्षित होता। ब्रह्म की भावना का उच्च रूप न रहकर नीति की भावना प्रादुर्भाव हुआ है।

शेख फरीद

डा० मेकालिफ 'खोलासातुत्तवारीख' के अधार पर इनका मृत्यु-काल संवत् १६१० बताते हैं। इनके जन्मकाल का पता नहीं चलता है। इनकी स्फुट रचनाएं आदि ग्रन्थ में संगृहीत हैं। अधिकतर ज्ञानात्मक हैं, यथा—

रिंदु वहूरी मरण वरु, लै जासी परणाइ।
आपण हथी जोलि कै, कै गलि लगै धाइ॥ आदि

१—देखिए हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

पेमी कवि

'पेमी' यह वास्तविक नाम न होकर कवि का उपनाम है। इन्होंने अपनी रचना में शाहे वक्त की वन्दना नहीं की है। अपने को जांत-पांत-रहित बतलाया है। इनके दोहे ज्ञान और भावपूर्ण हैं—

प्रेमी हिन्दू तुरक में हर रंग रहो समाइ।
देवल और मसीत में, दीपक एक है भाइ॥
मारग सिंध पग्रेम को, जानो चाहे कोय।
मगर मच्छ के बदन में, प्रथम बसेरो होय॥ आदि

बुल्ले शाह

आपका जन्म संवत् १७३७ में लाहौर जिले के पंडोल स्थान पर हुआ था। ये शत्तारी शाखा के अनुयायी थे। आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया। इनके अठवारा, बारामासा, काफी, दोहे आदि प्रसिद्ध हैं। इनकी फटकार कबीर की फटकार से कम नहीं है। भाषा में पंजाबीपन का पुट है।

माटी खुदी करेंदी यार।
माटी जोड़ा माटी घोड़ा, माटी दा असवार॥
× × ×
हँस खेल फिर माटी होई, पौंदी पांव पसार॥
बुल्ले शाह बुझारत बुझी, लाह सिरों भों मार॥ आदि।

नज़ीर

आपका वास्तविक नाम वली मुहम्मद है। ये नजीर अकबराबादी के नाम से विख्यात् हैं। ये उदार-भाव के सूफी थे। इनकी रचनाएँ सजीव और सरस होते हुए ज्ञानप्रद हैं—

जिस सिम्त नज़र कर देखे हैं, उस दिलबर की फुलवारी है।
कहीं सब्जी की हरियाली है, कहीं फूलों की गुलकारी है॥
× × ×
हम चाकर जिसके हुस्न के हैं, वह दिलबर सबसे आला है।
उसने ही हमको जी बख्शा, उसने ही हमको पाला है॥

अब्दुल समद

आपका पूरा नाम हजरत शाह साहब क़िबलः मुहम्मद अब्दुल समद उर्फ रनमस्त खा साहब बताया जाता है। आपके स्फुट भजनों का एक संग्रह है। भजन ज्ञानपूर्ण हैं—

साधो क्यों तूं रब का नाम बिसारो।
रब के बिसारे से पुन बाजी हारे॥
× × ×
साधो देखो अपने माहीं, घर में पड़ी काकी परछाईं।
गुरु लछिमा से ध्यान न आया,
एक है, एक बहुत हम गाया।
आँख खुली जब देखा "मस्ता"
वह है, वह है साईं॥

आपका उपनाम 'मस्ता' भी है।

बजहन कवि

शिव सिंह सरोज में इनके नाम पर केवल एक दोहे का उल्लेख मात्र है। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित 'अलिफबाए' के रचयिता भी बजहन हैं।

बजहन कहे तो क्या कहे, कुछ कहने की नहिं बात।
समन्दर समायो बूंद, अचरज बड़ो दिखात॥
बिनु गुरु 'बजहन' लेत है, जो कोउ बसन रंगाय।
यह निज के तुम जानियो, दोनों दर से जात॥

इन दोहों से भाव और विचार स्वयं सिद्ध हो जाते हैं।

अज्ञात कवि

किसी सूफी कवि की एक रचना "अल्लानामा" मिलती है। इसमें अल्लाह के नाम का उपदेश है जिसे दृष्टान्त द्वारा बताया गया है यथा—

जग फानूस की शक्ल बनाया। आपको चातर होय जताया॥
हाथी घोड़े वामें बनाये। दीपक बल सब सैर दिखाये॥
जब दीपक घी वामें आया। वह मन्दिर सब जगको भाया॥
जब लगा दीपक वामें रहे। इसी खुशी जग वाको कहे॥

हिन्दी के काव्य-साहित्य में इन ज्ञानमार्गी निर्गुणियों का अपने विशेष गुण

के कारण एक पृथक स्थान है। रहस्यवादी कवियों में कबीर का जो उच्च-स्थान है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि किसी का रहस्यवाद शुद्ध कहा जा सकता है, तो उन्हीं का। यदि इनमें कोई विशेष बात न होती, तो कैसे हिन्दी जगत् के महान समालोचक 'काव्य में रहस्यवाद' को अग्राह्य बताते हुए, कुछ अंशों में कबीर की उक्तियों को ग्राह्य बताते। प्रभाव की दृष्टि से भी विचार करने पर हिन्दी-भाषी जनता में कबीर का ही अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। हां, एक बात अवश्य दिखाई पड़ती है कि इन कवियों की धारा कालान्तर में स्थिर पड़कर रुक गयी। सगुण के आगे निर्गुण को स्थान न मिल सका। साधना-मार्ग की कठिनाइयां भी इस मार्ग में सहायक हुई हैं।

—:*:—

कृष्ण-भक्त कवि

कृष्ण-भावना का अविर्भाव

इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत विभिन्न हैं। पाश्चात्य विद्वान हाप-किन्स का कथन है कि भारत में श्री कृष्ण-भावना एक साधारण मनुष्य के रूप में आरम्भ हुई और तत्पश्चात् देवत्व का रूप प्रदान किया गया। इस कथन के विरोध में डाक्टर कीथ का कहना है—नहीं, श्रीकृष्ण महाभारत में ही देवरूप में हमारे सामने आते हैं। उसी समय से उनकी उपासना आरम्भ हो गयी।

प्राचीनतम ग्रन्थ[1] ऋग्वेद में यद्यपि कृष्ण का नाम पाया जाताहै, किन्तु उससे वहाँ संभवत उस कृष्ण का कदापि तात्पर्य नहीं है, जिन्हें वैष्णव-सम्प्रदाय वालों ने, अवतार मान कर अपनाया और उनकी लीलओं का वर्णन किया। ये कृष्ण वेद के अष्टम मण्डल रचयिता के रूप में आये हैं। ऋग्वेद के अनुक्रमणिका लेखक ने, कृष्ण को आंगिरस कहकर सम्बोधित किया है। छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण, देवकी पुत्र के रूप में आते हैं, जिन्हें घोर आँगिरस द्वारा शिक्षा दिलायी जाती है। अत स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण कोई वैदिक ऋषि थे, जिन्होंने ऋग्वेद के आठवे मडल की रचना की। ये वैष्णवों के कृष्ण से भिन्न थे। ऋग्वेद के बाद महभारत की रचना हुई[2]। जिसमें कृष्ण देवरूप में आते हैं—

एव प्रकृतिरव्यक्त कतर्त्त चैव सनातन ।
परश्च सर्व भूतेम्य तस्मात्पूज्यऽच्युतः ॥

—सभा पर्व

१—ऋग्वेद १५०० ईसा पूर्व में अवश्य मौजूद था-हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृ० २७।

२—शाम्वण्य सूत्र और आवश्वलायन में भारत एवं महाभारत ग्रन्थ का उल्लेख है (सूत्रों की रचना ई० पू० ६ वीं शती से लेकर ई० पू० दूसरी शती के बीच हुई-वही पृ० १५३)

इतना ही नहीं, श्री कृष्ण परब्रह्म रूप में भी दिखाई पड़ते हैं—

एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमक यश ।
एतदक्षरमव्यक्तं एतत् वै शाश्वतं मह ॥

यह बात अवश्य है कि यहाँ श्रीकृष्ण, गोपाल कृष्ण के रूप में नहीं दिखाई पड़ते । श्रीमद्भागवद्गीता में भी श्री कृष्ण ब्रह्म के ही रूप में दिखाई पड़ते हैं—

यत परतंरनान्यत् किंचिदस्ति धनन्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोक्त सूत्रे मणि गण इव ॥ ७।७

'नाराणीय' में कस-वध के निमित्त वासुदेव का अवतार माना गया है, किन्तु आश्चर्य की बात है कि श्री कृष्ण (वासुदेव) द्वारा गोकुल में असुरवध किये जाने तथा गोपाल-लीला का वर्णन नहीं किया गया है । गोपाल-कृष्ण को हरिवंश, वायु और भागवत नामक पुराणों में उसी रूप में चित्रित किया गया है, जिस रूप में वैष्णवों ने उनकी उपासना की है और करते हैं । यह कि हरिवंश पुरण की रचना ईसा के अनन्तर तीसरी शताब्दी में हुई । हरिवश पुराण में श्रीकृष्ण को ईश्वरावतार माना गया है और उनकी विस्तृत जीवनी लिखी गई है । भागवत पुराण में, जो कृष्ण-भक्त-कवियों का आधार ग्रन्थ है, श्री कृष्ण को विष्णु का अवतार माना है और उनके बालगोपाल तथा प्रेमी नायक के रूपों का सुन्दर चित्रण किया गया है । भक्ति तथा प्रेम-भवों के साथ इन्हीं ललित-लीलाओं का वर्णन सरस एवं माधुर्य पूर्ण कविता में किया गया । कृष्ण-काव्य के भव्य-भवन का निर्माण विशेष रूप से ही नहीं, पूर्ण रूपेण भागवत के ही आधार पर हुआ, यह कहने में अत्युक्ति न होगी । भागवत पुराण में कृष्ण-भक्ति की प्रधानता के साथ ही साथ आध्यात्मिक एव दार्शनिक बातों का भी सुन्दर सामन्जस्य पाया जाता है । इसी के आधार पर सर्वप्रथम निम्बार्क माधवाचार्य, विष्णु-स्वामी तथा रामानुज जी ने भक्ति की तुमुल-ध्वनि से गगन को गुंजित कर दिया ।

कुछ विद्वानों ने गोपालक एव गोप-प्रेमी श्री कृष्ण का आभीरों से सम्बन्ध स्थापित किया है । आभीर ही कालान्तर म 'अहीर' हुए । आभीर जाति का उल्लेख महाभारत में मिलता है । आभीर अथवा अहीर प्रकृति के उपासक थे । मैक्नी काल के अनुसार कृष्ण की ईश्वरीय सृष्टि सर्वप्रथम 'बलदेव' की भावना-रूप में मानी जानी चाहिये । श्री कृष्ण के आविर्भाव के सम्बन्ध में निम्न लिखित बातें विचारणीय हैं—

श्री कृष्ण की उपासना स्पष्टत. गोपालक, गोप-रूप में पायी जाती है । श्री कृष्ण को गायें तथा तज्जन्य वस्तुए ही प्रिय थी । श्री कृष्ण प्रकृति के जीवों के

रक्षक-रूप में भी हमारे सामने आते हैं। गाय, प्रकृति के सरलतम प्राणियों में से एक है। इसी से श्री कृष्ण को गोरक्षक गोपाल (गोपालक) कहा भी जाता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण श्री कृष्ण के हृदय में व्यक्ति चिह्न है। श्री कृष्ण के भाई का नाम बलराम है। वे भी ऋतुदेव माने जाते हैं। उनका अस्त्र भी 'हल' है जो कृषकों के लिए परमावश्यक अस्त्र है। कर्षण-कार्य बिना इसके असम्भव ही है। हम कह सकते हैं कि श्री कृष्ण और बलराम प्रकृति की सृजन-शक्ति के प्रतिनिधि हैं—Pastral Diety गोवर्धन-पूजा भी इसी कथन को पुष्टि करता है। कालान्तर में अन्य सिद्धांतों के मेल से श्री कृष्ण अनेक विचारों के प्रतीक स्वरूप हमारे सामने आए एव उनकी उपासना विशेष रूप से प्रेम-प्रतीक के रूप में चल पड़ी।[1]

भागवत् के पश्चात् कृष्ण-काव्य का प्रमुख ग्रन्थ 'गीत गोविन्द' ही पाया जाता है। इसमें श्री कृष्ण का चित्रण एक प्रेमी-नायक के रूप में किया गया है। ग्रन्थ में प्रेम-लीलाओं का सरस एव सुन्दर चित्रण पाया जाता है। कविता शृंगारिक होते हुए भी, भक्ति-रस से अप्लावित है आगे चलकर इसका प्रभाव इतना व्यापक पड़ा कि गीत-काव्य की प्रधानता सी हो गई।

हिन्दी में कृष्ण-काव्य का आरम्भ

हिन्दी में कृष्ण-काव्यों का सूत्रपात श्री वल्लभाचार्य के समय से होता है। इस समय देश में वैष्णव-आन्दोलन तीव्र गति से चल रहा था। श्री वल्लभाचार्य ने 'ब्रह्म-सूत्र' का भाष्य 'अणुभाष्य' के नाम से किया। ये शुद्धाद्वैत के प्रतिपादक थे। इन्होंने ब्रह्म में 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' नामक दो शक्तियों को माना है। उसके सत्, चित् और आनद रूप हैं। वह अपनी शक्ति से जगत-रूप में परिणत भी हो जाता है। जड़ में सत् ही आविर्भूत होता है और शेष दोनों स्वरूप तिरोभूत।[2] इन्होंने श्रीकृष्ण को पर-ब्रह्म माना और दिव्यगुण-सम्पन्न 'पुरुषोत्तम' कह कर सम्बोधित किया। आपने गो-लोक को, ब्रह्म-लोक का एक खण्ड मानते हुए उसमें भगवान की गोचारण, रासलीला आदि का समावेश माना। इस प्रकार की लीलाओं दो नित्य मानते हैं। जीव यदि इस नित्य-लीला में प्रविष्ट हो जाय तो उसे परम-गति प्राप्त होती है। इस प्रकार का कार्य भगवान् के अनुग्रह या पोषण से होता है। इस भगवदनुग्रह को पुष्टि

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

२— हिन्दी साहित्य का इतिहास (शुक्ल जी)

(पोषण) मानने से इनका मार्ग 'पुष्टि-मार्ग' कहलाया। भक्ति के भीतर श्रद्धा और प्रेम का मिश्रण होता है। वल्लभ-सम्प्रदाय में 'प्रेम' ही गृहीत हुआ। अत: इनकी भक्ति 'प्रेम-लक्षणा भक्ति' कहलायी। विट्ठलदास ने कृष्ण-लीला का गान करने के लिए, आठ कवियों का चुनाव 'अष्टछाप' नाम से किया, जिसमें ये कवि थे,—सूरदास, नन्ददास, कुंभनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी और चतुर्भुज दास। इन कवियों ने प्रचुर मात्रा में कृष्ण-काव्य का निर्माण किया, फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य लोकप्रिय, गौरवान्वित तथा व्यापक हुआ। इनके माधुर्य, प्रसाद, लालित्य आदि गुणों को देखकर संस्कृत विद्वानों के साथ ही साथ विजातीय भी इधर आकृष्ट हुए।

धार्मिक अशान्ति के युग में कृष्ण-काव्य ने हिन्दू-हिन्दी तथा हिन्दुत्व की सत्ता की पूर्ण रक्षा, की। जनता में धार्मिक औदार्य तथा भगवद्-प्रेम का प्रसार हुआ। हिन्दू और मुसलमानों के हृदय में पारस्परिक प्रेम का भाव जगा। दोनों ही स्नेह-सूत्र में बंधने लगे और प्रेम-भक्ति के क्षेत्र में एक हो गये। मुसलमान सहृदय कवि, कृष्ण-काव्य के गुणों पर रीझ कर तथा इसके भक्ति-सुधा रस से अभिसिंचित होकर राधाकृष्ण के भक्त हो, हिन्दी में काव्य-रचना करने लगे। इस माधुर्य-पूर्ण काव्य के लिए माधुर्य पूर्ण भाषा 'ब्रजभाषा' का ही व्यवहार किया जाना, उचित एवं आवश्यक था।

रसखान

आपके जन्म संवत् के बारे में मतभेद है। यह प्रसिद्ध है कि 'रसखान' ने भी वल्लभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठल नाथ जी से दीक्षा ली थी। विट्ठलनाथ की। मृत्यु संवत् १६४२ विक्रमी में हुई। अत. दीक्षा इसके पूर्व ही ली होगी। यदि दीक्षा-ग्रहण का समय सम्वत् १६४० माना जाय और उस समय, उनकी अवस्था २५ वर्ष मानी जाय तो अनुचित न होगा। इस प्रकार जन्म सम्वत् १६१५ विक्रमी के आसपास माना जा सकता है। जनश्रुति है कि रसखान के हृदय में भगवद्विषयक रति का आविर्भाव श्रीमद्भागवत के फारसी अनुवाद पढने से हुआ। भागवत में गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम को पढकर इन्हें ध्यान हुआ कि 'उसी' से क्यों न मन लगाया जाय, 'जिस' पर इतनी गोपियाँ अपने प्राण को अर्पण करती हैं। यह विचार कर ये वृन्दावन चले गये, जैसा कि इस दोहे से संकेत मिलता है—

तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेम देव की छविहि लखि, भए मिया रसखान॥

इस घटना के पूर्व आप एक मानिनी नायिका से प्रेम करते थे। '२५२ वैष्णवों की वार्ता' में एक दूसरी कथा पायी जाती है—

'सो वा दिल्ली में एक साहुकार रहे तो हतो। सो वा साहुकार को बेटा बहुत सुन्दर हतो। और अष्ट पहरे वा साहुकार के बेटा में चित रहे तो। एक में चित रहे हतो। एक दिन चार वैष्णव मिल के भगवद्वार्ता करते हतो। करते करते · जो प्रभू में चित्त ऐसो लगावनो जैसे रसखान की चित्त ·· ·· इतने में रसखान ये रास्ता निकसयो तिनने ये बातें सुनीं।

रसखान का स्थान उन भक्त-कवियों में है जो प्रेम के अनन्य उपासक थे। कवित्त-सवैयों में राधा-कृष्ण तथा गोपियों के प्रेम की व्यंजना करने के अतिरिक्त 'प्रेम वाटिका' में प्रेमतत्त्व का सुन्दर एव स्वतन्त्र-निरूपण किया है। इन्होंने एक आचार्य की भाति प्रेम के सम्बन्ध में अपनी धारणा व्यक्त की है। कृष्णदास की 'प्रेम-तत्त्व निरूपण' तथा ध्रुवदास की 'नेह-मंजरी', 'प्रेमलता' आदि पुस्तकों में 'प्रेम' का यह दिशद् वर्णन प्राप्य नहीं है, जो प्रेम,-वाटिका में पाया जाता है। इन्होंने प्रेम का लक्षण बताते हुए लिखा है—

बिनु गुन जोबन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामनातें रहित, प्रेम सफल रसखान॥

इतना ही नहीं प्रेम की इस स्वार्थ-हीनता के बीच, प्रेम का एकागी होना कहा है—

इक अगी बिनु कारनहि, एकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥

आपने प्रेम के स्वरूप को स्थिर करते हुए आनन्द, स्वरूप मानकर उसका दो भेद किया है—प्रथम लौकिकप्रेम, द्वितीय भगवद्प्रेम। दूसरे प्रकार के प्रेम को ही उच्चकोटि का प्रेम माना है। लौकिक तो निम्न श्रेणी का है।

दंपति सुख अह विषय रस,
पूजा निष्ठा ध्यान।
इतने परे बखानिये,
शुद्ध प्रेम रसखान॥

इतना ही नहीं, शास्त्रोक्त ढग से विभाजित प्रेम के परम्परागत दो भेदों का उल्लेख किया है। स्वार्थमूलक प्रेम को 'अशुद्ध' की श्रेणी में रखा है। सहज एवं स्वभाविक प्रेम को 'शुद्ध' माना है—

स्वारथ मूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभाव अनुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल॥

शुद्ध प्रेम की परख की कसौटी देखिए—

जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहू की नाहिं चाहि।
सोई अलौकिक, सुद्ध, सुप्रेम कहाहि॥

इतना ही नहीं—

डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहिकै, प्रेम बखानै सोय॥

रसखान तो 'मन' के एकत्व से बढ़कर 'तन' का एकत्व चाहने वाले थे। वे कहते हैं—

दो मन इक होत सुन्यो, पै वह प्रेम न आहिं।
होइ जबै द्वै तनहु इक, सोई प्रेम कहाहि॥

रसखान ने काम, क्रोध, मोह आदि मनोविकार से पृथक् प्रेम की सत्ता स्वीकार की है। उन्होंने हरि और प्रेम को एक ही माना है।

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप॥

कहा जा सकता है कि इसी भावना के आधार पर रसखान ने हरि स्वरूपद्द श्री कृष्ण को अपना उपास्य देव माना। यह कह देना असगत न होगा कि रसखान सूफ़ी कवियों से प्रभावित थे।[१]

नाम, रूप, लीला, और धाम के प्रति रसखान के उद्‌गार भक्तों जैसे ही हैं, किन्तु इन्हें लीला विशेष रूपेण प्रिय थी। रसखान निरन्तर श्री कृष्ण की लीलामय छवि का रस-पान किया करते थे। उन्हीं के ध्यान में तनमय रहते थे। 'लीला' के प्रति विशेष आकर्षण होते हुए भी 'धाम' के प्रति कम प्रेम नहीं प्रदर्शित किया है—

मानुष हौं तो वही रसखान, बसौं संग गोकुल गाव के ग्वारन।
जौं पसु हो तौ कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन।
पाहन हौं तो वही गिरिको, जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं, मिलि कालिंदि कूल कदंब की डारन॥

रसखान को ब्रजभूमि से अनन्य प्रेम था।

१—वही बीज अंकुर वही, एक वही आधार।

× × ×

कर्ता, कर्म, क्रिया करण आपहि प्रेम बखान॥

नज़ीर

इनका कविता काल सम्वत् १६३७ के लगभग माना जाता है। इनकी कविताएँ 'कुल्लियाते नज़ीर' में संगृहीत हैं। आप कृष्ण-भक्त-कवियों में से हैं। आपको विशेष रूप से श्रीकृष्ण का बाल-गोपाल स्वरूप ही प्रिय था। प्राय यह देखा भी जाता है कि भक्तों को बालगोविन्द-रूप ही प्रिय है। बात ऐसी जान पड़ती है कि माधुर्य-भावना की अभिव्यक्ति बाल्य-यौवनावस्था में ही अधिक हुआ करती है। इन्होंने श्री कृष्ण का बात चीत बहुत ही सुन्दर रीति से वन्दना किया है। आपकी बाल-चरित सुनाने में ही आनन्द आता था—

यारो सुनो यह ऊधो, कन्हैया का कलपन।
और मधुपुरी नगर कन्हैया का बलपन।

आपने श्री कृष्ण के बाल-जीवन का वर्णन किया है। आपको कृष्ण इतने प्रिय थे कि सबसे 'जय' बुलवाते थे—

सब मिलकर यारो कृष्ण मुरारी की बोलो जय।
गोविंद छैल कुज बिहारी की बोलो जय॥

भाषा बोलचाल की होते हुए फारसी शब्दों से प्रभावित है।

श्री कृष्णोपासक कवियों का मुख्य विषय श्रीकृष्ण की लीलाओं, विशेषकर 'रास' का गान करना था। इसकी भावना श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध से प्राप्त हुई। प्राय कृष्ण-भक्त सभी कवियों ने श्री कृष्ण के 'रास' और प्रकृति की शोभा का चित्रण किया है। श्री कृष्ण की एकान्त-भावना करने वालों की सख्या अत्यन्त अल्प ही मिलेगी। कृष्ण के इस रूप के साथ ही साथ भक्ति का भी सामंजस्य है, जो साख्य भावना की विशेषता है। सखी-सम्प्रदाय के अनुयायी, कृष्ण को पति-रूप में ग्रहण करते हैं। भक्त अपने को स्त्री रूप में प्रदर्शित करता है। यहां दार्शिनिकता की प्रधानता नहीं है, प्रेम-प्रधान है। इसका इतना प्रभाव फैला कि दक्षिण भारत में कुमारिया, देवमन्दिरों में अर्पित कर दी जाती थीं और भगवान कृष्ण के साथ उनका विवाह कर दिया जाता था। 'देवदासी' की प्रथा का प्रसार हो गया, जिसमें आगे चलकर व्यभिचार का भी दर्शन किया जाने लगा। दाम्पत्य-प्रेम का ही एक प्रकार से प्रचार होने लगा। भक्ति के स्थान पर शृगारिता की प्रधानता होने लगी। श्रीकृष्ण और राधिका की ओट में, खुले शृगार का वर्णन किया जाने लगा। भक्ति की सीमा के भीतर ऐसे वर्णन होने लगे जो कालान्तर में सीमा के बाहर जाने पर शृंगार की ही कोटि में,

गृहीत किये गये। प्रेम की उत्कृष्ट व्यंजना कराने के लिए 'परकीया' नायिका गृहीत हुई। नायक-नायिका भेद आदि प्रसंगों का वर्णन किया जाने लगा। चैतन्य महाप्रभु के शिष्य जीव गोस्वामी और रूपगोस्वामी द्वारा प्रस्तुत किये गये, ग्रन्थों के समक्ष रीतिकाल के बड़े से बड़े कवि पीछे छूट जाते हैं। इन भक्त कवियों का वर्ण्य-विषय कृष्ण-भक्ति तक ही परिमित न रहकर नखशिख, ऋतु वर्णन, और नायिका-भेद वर्णन में विस्तार पाने लगा। यही कारण है कि भक्तों की माधुर्य-भावना, भक्ति-क्षेत्र से शृंगार-क्षेत्र में जा पड़ी। शृंगारिक कवियों को प्रोत्साहन मिलने लगा और समय आने पर शृंगारिक रचनाएँ होने लगीं।

स्थूल-प्रेम-वर्णनकार

यद्यपि हिन्दी साहित्य के लिए सूफीवाद का सिद्धान्त मुसलमानों की विशेष एव महत्त्वपूर्ण देन थी, तथापि इस आध्यात्मिक क्षेत्र के अतिरिक्त उन्होंने साहित्य के अन्य अगों की पूर्ति मे भी उल्लेखनीय योग दिया है। मुसल्मानों ने हिन्दी के शृगार-साहित्य की अभिवृद्धि में भी योग दिया, किन्तु इसका प्रमुख कारण राजनीतिक वातावरण तथा प्रभुत्व माना जा सकता है, क्योंकि शासक जाति होने के कारण सुख, सुविधा, ऐश्वर्य भोग-विलास में लिप्त मुसलमानों की शृंगार की ओर प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही था। इस राजनीतिक तथा सामाजिक सुविधा के साथ-साथ तत्कालीन 'प्रेमलक्षणा' भक्ति, एव हिन्दी-साहित्य की प्रगति का भी शृंगार साहित्य के विकास में हाथ था। विचार करने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऐश्वर्यशाली तथा अर्थिक चिन्ताओं से मुक्त-समाज की प्रवृत्ति शृगारी हो ही जाती है। अतएव मुसलमानों की प्रवृत्ति का भी शृंगारी हो जाना क्षम्य था। यह युग भी 'स्वर्ण-युग' कहा जाता था। कालान्तर में सासारिक चिन्ता-मुक्त अध्यात्मवादी मुसलमानों का सूफीवाद की ओर आकृष्ट होकर 'इश्क़ हक़ीक़ी' से 'इश्क़ मजाज़ी,के पथ पर अग्रसर होने वाले फकीरों को स्थल-प्रेम का दिग्दर्शन एवं वर्णन करने पड़े। सूफीवाद के इस 'इश्क़ हक़ीक़ी' वाले सिद्धान्त से सन्निहित प्रेम-वर्णन की परम्परा का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। सूफीवाद के अन्तर्गत स्थूल- प्रेम सम्बन्धी साहित्य का सृजन अधिकाश रूप में होने लगा। जब सक्रान्तिकाल में कबीर आदि जैसे साम्प्रदायिक ऐक्य के पोषक सन्तों ने भी अध्यात्मवाद द्वारा जनतामें पारस्परिक सहयोग की भावना का स्थापन करना चाहा था, तथा उन्हें भी प्रेम का आश्रय लेना पड़ा था। किन्तु जहाँ जातीय ऐक्य-स्थापन की चेष्टा में सलग्न सन्त-समुदाय विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा का प्रचार कर रहा था, वहाँ कतिपय हिन्दुओं ने अपनी धार्मिक-भावना को शकित पाकर तत्कालीन वैष्णव-परम्परा पर चलते हुए 'राम' और 'कृष्ण' के चरित्र द्वारा हिन्दुओं में साहस और आस्था का सचार करने की सतत् चेष्टा में लगे रहे। इनमें से कृष्ण-भक्त-कवियों ने कृष्ण की अनन्त लीलाओं के साथ-साथ उनकी प्रेम क्रीड़ाओं का वर्णन करने में, प्राचीन परम्परा का भी आश्रय लिया। फलत विद्यापति एव वल्लभचार्य आदि जैसे कवियों एव भक्तों की वर्णित-पद्धति के अनुसार ही इनकी रचनाओं में भी शृगार का बाहुल्य हुआ।

अनन्त धार्मिक भावनाओं के परिधान से परिवेष्ठित शृंगारिक भावनाएँ साहित्य में तीव्रगति से बढ़ती गईं। कालान्तर में जब हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य की स्थापना हो गयी, तब व्यापक देश-शान्ति के वातावरण में साहित्य में शृंगार का एकाधिपत्य स्थापित हो गया और शृंगारिक रचनाओं की अधिकता के कारण हिन्दी-साहित्य में 'रीति-काल' का पृथक अस्तित्व दृढ़ हो गया।

इस रीतिकाल में 'कला' और 'काव्य' का विकास तीव्र गति से हुआ। अलंकार और पिंगल ग्रन्थ रचे जाने लगे। कवियों में आचार्यत्व के लिए होड़ सी लग गई। इस प्रकार कवि के लिए नायिका-भेद, अलंकार या पिंगल-शास्त्र-ग्रन्थ लिखना विशेष योगता का सूचक माना जाने लगा। किन्तु साथ ही साथ कतिपय कवि-घनानन्द, आलम आदि अपने स्वच्छन्द मुक्तकों द्वारा भी अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रयास करते आए, किन्तु उन्हें भी शृंगार का ही आश्रय लेना पड़ा। इनके अतिरिक्त राज्याश्रित कवियों का अपने आश्रयदातओं की रुचि के अनुसार शृंगारपूर्ण रचनाएँ करनी पड़ती था।

उपर्युक्त सभी कारणों से शृंगार का साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा और शृंगार के साथ-साथ स्थूल, प्रेम-राग की परम्परा पूर्णतया समन्वित हो चली, जिसका प्रभाव आज तक किसी न किसी रूप में अमिट चला आ रहा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि तथाकथित 'रीतिकाल' तक आते-आते स्थूल-प्रेम वर्णन का स्थान साहित्य में स्थायी हो गया। अतएव हिन्दी-साहित्य-सेवी मुसलमानों ने भी शृंगार-साहित्य को अछूता नहीं छोड़ा। यही कारण है कि नीति के प्रसिद्ध दोहों के रचयिता 'रहीम' ने भी 'नायिका-भेद' विषयक ग्रन्थ का प्रणयन किया। 'रहीम' समय के प्रभाव में कैसे बच सकते थे। अतएव हम यहाँ पर उन्हीं मुसल्मान कवियों के आलोचनात्मक अध्ययन का प्रयास करेंगे जिन्होंने सूफी-वाद से नहीं, अपितु वैष्णव-भक्त सम्प्रदाय से प्रभावित होकर अथवा सामाजिक शान्त वातावरण या स्वभावगत अभिरुचि के कारण या रीतिकाल की परम्परा के नाते स्थूल प्रेम का वर्णन किया है।

रहीम

इनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। इनका जन्म सम्वत् १६१० माना जाता है। ये अकबरी दरबार के प्रसिद्ध 'नवरत्नों' में से थे। इस काल में कविता की वाग्धारा में राजा और रईस सभी बह चले थे। अकबर भी कविता करते थे। यद्यपि इनकी प्रसिद्धि नीति-विषयक मुक्तकों से ही हुई है और ये

नीति-रचना-कार-कवि भी कहे जाते हैं, तथापि इनकी रचनाओं में शृंगार की प्रचुरता पायी जाती है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि 'बरवै छंद' का का सूत्रपात रहीम के ही समय में हुआ। इस संबंध में एक कथा प्रचलित है इनके किसी सेवक की पत्नी ने, प्रवास करने वाले अपने पति से निम्नलिखित छंद द्वारा अपनी रक्षा का अनुरोध किया था—

प्रेम प्रीति कर बिरवा चलेउ लगाई।
सींचन कै सुधि लीन्हेउ मुरझि न जाइ।

कहते हैं कि यह छंद रहीम को इतना प्रिय लगा कि इन्होंने, इसी छंद में छोटा सा 'नायिका-भेद' लिख डाला था। इस छंद में प्रयुक्त 'बिरवा' शब्द के आधार पर इसका नाम 'बरवै' रखा गया। यह बात सत्य की कसौटी पर खरी उतरती नहीं जान पड़ती, क्योंकि सं० १५९८ में कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' नामक छोटे से ग्रन्थ में बरवै छंद का व्यवहार किया है। रहीम ने 'बरवै' नायिका-भेद' में स्थान-स्थान पर प्रेम की कितनी सुन्दर व्यंजना की है, इसका परिचय नीचे लिखे पदों से मिलता है। विरहिणी को कोयल की बोली सुखद नहीं लगती—

भोरहि बोलि कोइलिया बढ़वति ताप।
घरी एक भरि, अलिया! रहु चुपचाप॥

विरह पीड़िता, विरह-काल काटने के लिए नायक से 'सुमिरनी' माँगती है।

पीतम इक सुमिरिनियाँ मोहिं देइ जाहु।
जेहि जपि तोर बिरहवा करब निबाहु॥

रहीम ने भारतीय विरह-व्याकुल नायिका की अन्तर्दशा का कितना सुन्दर और सहृदयता पूर्ण चित्रण किया है।

रहीम ने नायिका के अंग-प्रत्यंग वर्णन में भी कौशल का प्रदर्शन किया है। 'ज़ुल्फ़' पर कई कवियों ने रचनाएं की हैं। देखिए रहीम क्या कहते हैं—

कठिन कुटिल कारी देख दिलदार ज़ुल्फ़ें।
अलि कलित बिहारी आपने जी की कुल्फें॥

नायिका की वय सन्धि का वर्णन भी देखने योग्य है—

लागेउ आनि नवेलहिं मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा दृग तिरछान॥
कवन रोग दुहुं छतिया उपजेउ आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा लगि जनु जाय॥

नायिका का नेत्र-वर्णन भी कितने सुन्दर ढंग से किया है—

तरल तरनि सी हैं, तीर सीनोक दारैं।
अमल कमल सी हैं, दिल बिदारैं॥
मधुर मधुप हेरैं मान, मस्ती न राखैं।
विलसति मन, मेरो सुन्दरी श्याम आखैं॥

बरवै नायिका भेद, शृंगार-सोरठा, मदनाष्टक, और रासपंचाध्यायी में ऐसे अनेक प्रसंग पाये जाते हैं। रहीम यदि एक ओर नीतिकार हैं तो दूसरी ओर इन्हें शृंगारिक-रचनाकार भी कह सकते हैं। रहीम का भाषा पर, तुलसी का सा ही अधिकार है[1]। अलङ्कार आदि का भी सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया गया है। कवि की केवल बुद्धि ही, कार्यशील नहीं है, हृदय भी सजग है। मार्मिकता का मूल कारण यही है।

आलम

ये जाति के ब्राह्मण थे पर शेख नामकी रंगरेजिन के प्रेम में फंस कर मुसलमान हो गये। इनका कविताकाल संवत् १७४० से १७६० तक माना जाता है। इनकी कविताएं 'आलम-केलि' नामक पुस्तक में संगृहीत हैं। इनके प्रेम की कथा इस प्रकार है कि आलम ने एक बार शेख को अपनी पगड़ी रंगने को दी जिसकी खूँट में एक कागज का टुकड़ा बंधा था, जिस पर लिखा था—

'कनकछरी सी कामिनी काहे को कटि छीन'।

शेख ने इसकी पूर्ति इस प्रकार की—

'कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन।'

और पगड़ी रंग कर ज्यों की त्यों लौटा दी। खूँट में वही कागज बंधा था। आलम इस समस्या-पूर्ति को देखकर आश्चर्य चकित रह गये और उस पर मुग्ध हो गये। भविष्य में आलम की रचना में शेख का भी सहयोग रहता था। आलम स्वच्छंद प्रेम के गायक थे। ये रीति-मुक्त कवि थे। ये प्रेम के उपासक थे। इनका प्रेम साधारण कोटि का न होकर जाति-पांति से परे था। इनकी रचनाएं भाव-तरंगों की वशवर्तिनी होकर चली हैं। काव्य के कला-पक्ष के साथ ही साथ हृदय-पक्ष का सुन्दर समन्वय इनकी कविता में पाया जाना, इनकी विशेषता है। प्रेमी हृदय की अभिव्यक्ति कितनी सुन्दर और भावुकता को लिए हुए है—

१—शुक्ल जी कृत हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २४१।

दाने की न पानी की, न आवै सुध खाने की,
या गली महबूब की आराम खुसखाना है।
+ + + +
दिल से दिलसा दीजै, हाल के न ख्याल हुजै,
बेखुद फक़ीर वह, आशिक़ दीवाना है॥

सच्चे कवि की परख वास्तविक अनुभूतियों के चित्रण में ही, की जाती है। विरह की स्थिति की व्याख्या देखिए—

आलम प्रेम वियोग में, उठत अटपटी झार।
मन लागै जियार जरै, लाज होत बरि छार॥

इनकी एक-एक पक्तियों में 'प्रेम की पीर' की पुकार है। शृंगार-रस की उन्मादमयी ऐसी उक्तियां, इनकी रचना में पायी जाती हैं कि पाठक और श्रोता लीन हो जाते हैं, रस-विभोर हो जाते हैं। 'प्रेम की तन्मयता' की दृष्टि से आलम की गणना 'घनानद' और 'रसखान' की कोटि में होनी चाहिये।[1]

आलम द्वारा वर्णित नायिका के नेत्र का वर्णन देखिये—

रात के उनीदे, अरसाते, मदमाते राते,
अति कजरारे दृग तेरे यों सुहात हैं।
तीखी तीखी कोरनि करोरि लेत काढि जीउ,
केते भए घायल और केते तलफात हैं॥

छन्दों में अलंकारों का भी, भाव के भाव साथ-साथ सुन्दर प्रयोग किया गया है।

इस काल में नायक-नायिका भेद-वर्णन, अलंकार आदि के उदाहरण लिखने की परिपाटी सी चल पड़ी थी। आलम भी इसी युग में हुए, किन्तु रीति-बद्ध रचना करने वालों से दूर रहकर, उत्तम कोटि की रचना की—भाव की प्रधानता हुई। कवि की भाषा परिमार्जित एव सुव्यवस्थित है। कहीं-कहीं पर फारसी शैली के रस-बाधक-भाव भी, इनकी रचना में पाये जाते हैं, पर प्रीति की अनयता है—

'आलम ऐसी प्रीति पर सरबस दीजै वारि'

शेख रंगरेजिन

यह वही रंगरेजिन है जिस पर आलम मुग्ध हो गये थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह भी एक सच्ची प्रेमिका थी। कहा जाता है कि कुछ ऐसे पद भी

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास (शुक्ल जी कृत)

है, जिनकी रचना 'आलम' और 'शेख दोनों ने ही मिलकर की है। निम्न-लिखित छंद में चौथा चरण शेख का बनाया कहा जाता है—

प्रेम रंग डगमगे जगे जामिनि के,
जोवन की जोति जगि जोर उमगत है।
× × ×
आलम सो नवल निकाई इन नेनन की
× × ×
चाहते हैं उडिवे का, देखत मयंक मुख
जानत हैं रैनि, तातें ताहिं मे रहत हैं॥

यदि बात सत्य है तो शेख की 'सूझ' का पता चलता है। इतनी दूर की 'सूझ' भावुकता के लिए हुए, सरस है। भाषा की गठन आदि बातें आलम जैसी ही पायी जाती हैं। शेख की शृंगारिक रचनाएँ द्रष्टव्य हैं—

प्यारी परयक पै निशंक पर सोवत ही।
कंचुकी दरकि नेक ऊपर को सरकी॥
अतर गुलाब और सुगन्ध की महक पर,
देखी उठि आवति कहाँ ते मधुकर की॥
बैठो कुच बीच नीच उड़ि न सकत केहूँ।
रही अवरेख 'सेख' दुति दुपहर की।
मानहु समर में सुमिरि बैर शकर को।
मारि शबरारि फाँक रह गई सर की॥

इन प्रकार की रचनाओं में घोर शृंगार का वर्णन पाया जाता है। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों द्वारा शृंगार का प्रचुर मात्रा में वर्णन किया गया है। एक नमूना और देखिए—

रात रन विपय जे रहे हैं पति सन्मुख।
तिन्हें बक्सीस बकसी है मैं विहसि कै॥
करन को ककन उरोजन को चन्द्रहार।
कटि माहि किंकनी रही है अति लसिकै॥

मुबारक

इनका पूरा नाम मुबारक अली बिलग्रामी था। जन्म सम्वत् १६४० मान जाता है। ये अरबी-फारसी के विद्वान तो थे ही, पर हिन्दी के सहृदय कवि भी थे। इनकी रचनाएं सम्पूर्ण रूप से शृंगारिक हैं। इन्होंने नायिका के अगों का

सविस्तर वर्णन किया है। कहा जाता है कि दशों अंगों को लेकर एक-एक शतक की रचना की। 'अलक शतक' और 'तिल शतक' में क्रम से अलकों तथा तिलों (मुख पर के) का वर्णन पाया जा हैं। इनकी उत्प्रेक्षाएं बहुत बढी चढी होती थीं। वर्णन का उत्कर्ष भी कभी कभी बहुत दूर तक पहुंच जाता है दोहा के अतिरिक्त सोरठा, कवित्त और सवैयों में भी रचनाएं पायी जाती हैं।

अलक-वर्णन में वस्तुत कवि की सूझ देखने योग्य है—

अलक मुबारक तिय वदन लटकि परो यों साफ़।
मुखनवीस मुनसी मदन लिख्यो काच पर क़ाफ़॥

और भी देखिए—

लगी मुबारक झुकि अलक, लाल बेंदली भाल।
लेत मोल ससि से सुधा, देत मोल मनि व्याल॥

कितना सुन्दर आदान-प्रदान (प्रेम-व्यापारियों का) चल रहा है! जो उच्च कोटि की कही जा सकती है।

'तिल-वर्णन' में तो कवि हमें साक्षात् भगवान् 'शालिग्राम' का दर्शन कराता है—

गोरे मुंह पर तिल लसै, ताहि करौं परनाम।
मानहुं चन्द बिछाय के, बैठे सालिग्राम॥

उत्प्रेक्षा साधारण कोटि की नहीं है। अब 'मन' योगी का योगाभ्यास भी देख लिया जाय—

मन जोगी असन कियों, चिबुक गुफा में जाय।
रह्यों समाधि लगाय के, तिल-तिल द्वारे लाय॥

मन योगी भले ही साधन-गुफा पर शिला का आवरण डाल दे किन्तु वर्णन से योगाभ्यास का अभ्यास तो कठिन ही हो जाता है।

अहमद

इनका जन्म सम्वत् १६६० विक्रमी माना जाता है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा को इनकी लिखी हुई कोकशास्त्र विषयक पोथी 'रसविनोद' मिली है। इस पुस्तक में 'वयस-प्रमाण' आदि विषय पर की गयी रचनाएँ भी हैं। इनकी स्फुट रचनाएँ पायी जाती हैं। इनमें से कुछ नीति-विषय से सम्बद्ध हैं रहस्यात्मक दोहे भी पाये जाते हैं। 'विनोदकारों' ने इन्हें सूफी कवि माना है। रहस्योक्ति है—

गुपुत प्रकट संसार मधि जौकछु विधना कीन।
अगम अगोचर गुन प्रकट रोम रोम कहि दीन॥

ताहिर

ये आगरे के रहने वाले शृंगारी कवि थे। जन्म संवत् का तो पता नहीं चलता। किन्तु यह कहा जाता है कि सम्वत् १६७८ में इन्होंने एक 'कोकसार' की रचना की थी। इस पुस्तक में नायिका-भेद आदि का वर्णन पाया जाता है। कवि पद्मिनी-स्त्री का वर्णन करता है—

पदुम जाति तन पदुमनि रानी। कन सुबास दुवादस बानी॥
कंचन बरन कमल की बासा। लोचन भंवर न छाड़ह पासा॥
अल्प अहार अल्प मुसकानी।
अलप काम अति चतुर सुजानी॥

प्रीतम

इनका पूरा नाम था अली मुहीब खाँ 'प्रीतम'। इनकी लिखी हुई पुस्तक 'खटमल बाईसी' प्रसिद्ध है। इसकी रचना संवत् १७८७ में हुई। यह पुस्तक हास्य-रसविषयक है। हास्य, शृंगार-रस का विरोधी नहीं होता। हास्यरस में आलम्बन की ही प्रधानता होती है यहाँ से एक प्रकार की हास्यरस की परम्परा चली, यद्यपि संस्कृत नाटकों में हास्य का बराबर पुट दिया गया है। इनके हास्य का विषय 'खटमल' ही है। यह कवित्त देखिए—

जगत के कारन, करन चारो वेदन के,
कमल में बसे वै सुजान ज्ञान धरि कै॥
पोषन अवनि, दुख-सोषन तिलोकन के,
सागर में जाय सोए सेस सेज करि कै॥
× × ×
बिधि हरि, हर और इनतें न कोऊ, तेऊ,
खाट पै न सोवै खटमलन कों डरि कै॥

रसलीन

इनका नाम सैयद गुलाम नबी था। इन्होंने अपनी पुस्तक 'अंग दर्पण' की रचना सम्वत् १७९४ में की। इस ग्रन्थ में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से युक्त अंगों का चमत्कारपूर्ण वर्णन पाया जाता है। यह प्रसिद्ध दोहा 'अंग-दर्पण' का ही है, जिसे जन-साधारण बिहारी का समझता है—

अमिय, हलाहल, मद भरे, सेत, स्याम रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परत जेहि चितवत इकबार॥

उनकी उत्प्रेक्षाओं का नमूना देखिए—

अमल कपोलन स्वेद कन, हगन लगत इहि रूप ।
मानों कन्चन कम्बु में, मोती जड़े अनूप ॥

काव्य रसियों के बीच इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि सूक्तियों के लिए बहुत ही है।

इनकी एक दूसरी पुस्तक 'रस प्रबोध' पायी जाती है। इसमें रस निरूपण दोहों में किया गया है। पुस्तक में रस, भाव, नायिका भेद, षट्-ऋतु, बारहमासा अनेक प्रसग का निरूपण किया गया है। यह रस विषयक ग्रन्थ छोटा होते हुए भी उत्तम है। रसलीन का ध्यान भाव की प्रधानता एवं प्रबलता की ओर उतना नहीं गया, जितना उक्ति वैचित्र्य की ओर। रसलीन में काव्य के कलापक्ष का ही प्राधान्य है। यह चमत्कार पूर्ण उक्ति देखिए—

चख चलि स्रवन मिल्यो चहत, कच बढि दुखन छ्वानि ।
कटि निज दरब धस्यो चहत, वक्षस्थल में आनि ॥

वय: सन्धि का वर्णन भी देखते ही बनता है—

तिय-सैसव-जोबन मिले, भेद न जान्यो जात ।
प्रात समय निसि द्यौस के दुवो दरसात ॥

उक्ति वैचित्र्य के साथ ही जाथ सूक्ष्म निरीक्षण भी है। प्रात.काल रात्रि के गमन और दिवस के आगमन के समय की बेला से वय. सन्धि की उपमा अत्यन्त सुन्दर है।

नायिका के नख-शीख वर्णन के प्रसग में आपकी उक्ति देखने योग्य है—

रोमावलि रसलीन वा, उदर लसति यहि भाति ।
सुधा कुम्भ कुच हित चली, मनो पिपिलका पाति ॥

यद्यपि रसलीन की रचनाए दोहे में ही पायी जाती हैं, तथापि भाव, कल्पना, चमत्कार की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

भाषा ब्रज है।

अहमदुल्लाह

इन्होंने 'सम्वत् १७७३ में 'दक्षन विलास' नामक एक काव्य ग्रन्थ की रचना की इसमें नवरस तथा नायिका भेद का वर्णन उत्तम रीति से किया गया है। इनका उपनाम 'दक्षन' था। इनकी हस्त लिखी पुस्तक सिहोर निवासी गोविन्द गिल्ला भाई के पास है। इनकी कविता सरल और मनोहर है। अरबी और फारसी के विद्वान होते हुए भी शुद्ध ब्रज भाषा में कविता करने का इनका प्रयास सफल रहा। कवि ने शृंगार वर्णन की परम्परा के अनुसार राधा को नायिक

मानकर साधारण नायिका के कटाक्ष आदि का वर्णन निम्नलिखित सवैया में किया है—

तुव नैनन लूटि लिये मृग 'दत्तन' बैनन लूटि सुधा की मिठाई।
धर मैन के सैनन लूटि लिये गज, मैनन चाल मतंग सुहाई॥
कटि लूटि नितन लियो लट सो हठि लूटि है नागिनि की विषताई।
पल में लट मार दल्यारित राधे ते लूटि है नन्द किशोर कन्हाई॥

आज़म

इनके विषय में विशेष जानकारी नहीं है। कहा जाता है कि इन्होंने 'नखशिख' और 'षट् ऋतु' पर दो ग्रन्थ लिखे। वय सन्धि का वर्णन निम्नलिखित कवियों में किया गया है—

वय सन्धि नवला नवोढा बाला श्याम अरु
कहिए किशोरी जाको जोबन जगमगात।
बरस बरस आमरन रस बस लगि
अबला तरुनी दूनो रस सरसात॥

हफीज़ुल्ला खां

इनका जन्म सम्वत् १६१३ में हुआ। इन्होंने 'प्रेम तरंगिणी' 'मनमोहनी' 'रसिक सजीवनी' 'नवीन सग्रह' और 'हजारा' नामक पुस्तकों का प्रणयन किया। कवि ने नायक के विरह का वर्णन इस प्रकार किया है।

हमें चित चैन नहीं पलहू जब ते, वह प्रान पियारी सिधारी।
फीकी लगै सिगरी सुख सम्पत्ति, ऐसी भई विरहा अधिकारी॥

यह विरह-वर्णन की परम्परा भारतीयता को लिए हुए नहीं है, यहाँ पर सूफी प्रभाव लक्षित होता है।

कवि नीचे के कवित्त में 'प्रेम' के अभाव को अनेक वस्तुओं में अभाव होने का संकेत करता है—

फूल बिन बाग जैसे, वाणी बिन राग जैसे,
पानी बिन तड़ाग, अरु रूप बिन अंग है।
× ×
प्रेम बिन मीत जैसे, शोभा बिन रंग है।
× ×

करीम

इनके सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी नहीं है। इनके कुछ कवित्त देखे जाते हैं। नीचे के कवित्त में नेत्र-वर्णन किया गया है—

रूप रस सारहि सुधा रसोधि साधन के,
कारीगर मैन कोठि विधिन सवारी है।
सुकवि 'करीम' देखो देखत ही लागत हैं।
वेधि वेधि हिये भई अति रतनारी है।
घायल करि डारी ब्रजनारी वैस सारी,
अखिया विहारी जू की काम की कटारी है॥

ध्यान देने की बात है कि कवि ने नायक कृष्ण के नेत्र का वर्णन किया है।

अमीर खुसरो

इनका वास्तविक नाम 'अबुल हसन' था। इनका जन्मकाल संवत् १३१२ है। इन्हें बाल्य-अवस्था से ही कविता करने शौक था। कहा जाता है कि इन्होंने कुल ९९ ग्रथों की रचना की है किन्तु केवल २२ ही उपलब्ध हैं। इनकी मुकरिया अति प्रसिद्ध हैं। इसमें कहीं-कहीं पर भाव गाभीर्य पाया जाता है यथा—

खुसरू रैन सोहाग की, जागी पी के सग।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भये एक रंग॥

इसके अतिरिक्त इनके ज्ञान मार्गी दोहे भी हैं—

अन्त विदा है चलि है, दुलहिन, काहू की कछु ना बसाई।।
मौज खुसी सब देखत रह गए, माता-पिता और भाई॥ आदि

हाजी वली

इनके सम्बन्ध में केवल इतना ही पता चलता है कि ये 'कस्वा नूद' इलाका ग्वालियर के निवासी थे। मिश्रबन्धुओं ने 'प्रेमनामा' के रचयिता का नाम केवल 'हाजी' लिखा है। कविता काल संवत् १६१० के पूर्व कहा गया है। लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रेमनामा फारसी लिपि में प्रकाशित है। इसमें प्रेम के रहस्य का वर्णन है—

जरत जरत जिव जर गया, तब मैं करी पुकार।
उलझा झाड़ प्रेम का, हाजी वेग नेवार॥ आदि

यह दिखलाया जा चुका है कि रीतिकाल में कवियों ने एक प्रणाली ही सी

बना ली थी कि लक्षणों को सूक्ष्म रूप में लिखकर वे अपने कवि-कर्म में प्रवृत्त हो जाते थे। इसके फलस्वरूप शृंगाररसपूर्ण-अलंकार आदि के सरस और मनोरंजक उदाहरणों का एक अच्छा मुक्तक साहित्य, हिन्दी साहित्य को अंगरूप में मिला। मुक्तक काव्यों का एक सरस साहित्य प्रस्तुत हुआ। शृंगार रस के आलम्बन, नायक-नायिकाओं को लेकर नायिका-भेद के रूप में रचनाएँ हुईं। परकिया नायिका का वर्णन किया जाने लगा। शृंगार रस के उद्दीपन को लेकर षट्-ऋतु-वर्णन की भी योजना की गयी। इन शृंगारी कवियों का प्रभाव आने वाले साहित्य पर सतत् पड़ता गया। आधुनिक युग में ऐसी कविताओं का अभाव नहीं है।

करीम

इनके सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी नहीं है। इनके कुछ कवित्त देखे जाते हैं। नीचे के कवित्त में नेत्र वर्णन किया गया है—

रूप रस सारहि सुधा रसोधि साधन के,
कारीगर मैन कोठि विधिन सवारी है।
सुकवि 'करीम' देखो देखत ही लागत हैं।
बेधि बेधि हिये भई अति रतनारी है।
घायल करि डारी ब्रजनारी वैस सारी,
अ खिया विहारी जू की काम की कटारी है॥

ध्यान देने की बात है कि कवि ने नायक कृष्ण के नेत्र का वर्णन किया है।

अमीर खुसरो

इनका वास्तविक नाम 'अबुल हसन' था। इनका जन्मकाल संवत् १३१२ है। इन्हें बाल्य-अवस्था से ही कविता करने शौक था। कहा जाता है कि इन्होंने कुल ९९ ग्रंथों की रचना की है किन्तु केवल २२ ही उपलब्ध हैं। इनकी मुकरियां अति प्रसिद्ध हैं। इसमें कहीं-कहीं पर भाव गाम्भीर्य पाया जाता है यथा—

खुसरू रैन सोहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भये एक रग॥

इसके अतिरिक्त इनके ज्ञान मार्गी दोहे भी हैं—

अन्त विदा है चलि है, दुलहिन, काहू की कछु ना बसाई।रे
मौज खुसी सब देखत रह गए, माता-पिता और भाई॥ आदि

हाजी वली

इनके सम्बन्ध में केवल इतना ही पता चलता है कि ये 'कस्बा नूद' इलाका ग्वालियर के निवासी थे। मिश्रबन्धुओं ने 'प्रेमनामा' के रचयिता का नाम केवल 'हाजी' लिखा है। कविता काल सवत् १६१० के पूर्व कहा गया है। लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रेमनामा फारसी लिपि में प्रकाशित है। इसमें प्रेम के रहस्य का वर्णन है—

जरत जरत जिव जर गया, तब मैं करी पुकार।
उलझा झाड़ प्रेम का, हाजी वेग नेवार॥ आदि

यह दिखलाया जा चुका है कि रीतिकाल में कवियों ने एक प्रणाली ही सी

बना ली थी कि छन्दों को सुन्दर रूप में लिखकर वे अपने [illegible] से मुक्त हो जाते थे। इसके फलस्वरूप शृंगाररसपूर्ण-अलंकार आदि के लक्षण और [illegible] उदाहरणों का एक अच्छा मुक्तक साहित्य, हिन्दी साहित्य को [illegible] से मिला। मुक्तक काव्यों का एक सरस साहित्य प्रस्तुत हुआ। शृंगार रस के आलम्बन, नायक-नायिकाओं को लेकर नायिका-भेद के रूप में रचनाएँ हुईं। परकीया नायिका का वर्णन किया जाने लगा। शृंगार रस के उद्दीपन के हेतु षट्-ऋतु-वर्णन की भी योजना की गयी। इन शृंगारी कवियों का प्रभाव आने वाले साहित्य पर सतत् पड़ता गया। आधुनिक युग में ऐसे कवियों का अभाव नहीं है।

—:❀:—

उपसंहार

"साहित्य का उद्देश्य सर्वदा से यही रहा है कि एक का भाव दूसरा ग्रहण करके अपने अन्तःकरण में भावों की अनेकरूपता का विकास करे"

—साहित्य और समाज

इसी सिद्धान्त के अनुसार जब मुसलमानों का हिन्दुओं से सम्पर्क हुआ और अनेक पूर्व वर्णित कारणों से मुसलमानों ने हिन्दी में जब से रचना करनी आरम्भ की तब से उनके भावों द्वारा हिन्दू और हिन्दी के कलाकार प्रभावित हुए बिना, न रह सके। दोनों श्रेणी के कवियों के भावों के घात-प्रतिघात द्वारा हिन्दी के प्रेम काव्यों में भावों की अनेक रूपता का जैसा विकास हुआ वैसा सस्कृत को छोड़ कर विश्व की अन्य भाषाओं में नहीं दिखाई पड़ सकता। इसी कारण हिन्दी के प्रेमकाव्यों का एक अंश जहाँ निम्न-धरातल तक पहुँच कर केवल स्थूल-प्रेम वर्णन का रूप धारण कर सका, वहाँ उसका दूसरा अंश उच्चतम स्तर तक पहुँच कर रहस्यवाद एवं आध्यात्मवाद का स्वरूप धारण कर, विश्वसाहित्य का अद्वितीय अक्षय कोष बन सका। जिसका प्रभाव विश्व भर में व्यापक पड़ा। इससे प्रभावित 'नोबुल पुरस्कार' विजेता अमर आयरिश कलाकार श्री विलियम बटलर ईट्स, नार्वेजियन कलाकार श्री इब्सन, फ्रेंच विश्व-विख्यात कलाकार रोम्या रोला तथा बगाली विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं।

वस्तुत रहस्यवाद की भावना का बीजारोपण हमारे देश में ही हुआ, किन्तु कलान्तर में उसका विकास पाश्चात्य देशों में हुआ और अरब तथा फारस आदि मुसलमानी प्रान्तों में नए परिधान से परिवेष्टित हुआ। वह 'तसव्वुफ' या 'सूफीवाद' कहलाया। भारत में मुसलमानों के सपर्क के कारण इस सूफीवाद ने हिन्दुओं को भी प्रभावित किया। इसने नया रूप धारण किया।

जिस प्रकार आध्यात्मिक प्रेमकाव्यों की सृष्टि में मुसलमानों ने सफल योग देकर हिन्दी का भाण्डार भरा, उसी प्रकार उन्होंने स्थूल-प्रेम-वर्णन को भी नवीन गति दी। यद्यपि मुसलमानों के पहले भी संस्कृत साहित्य में स्थूल-प्रेम-वर्णन या शुद्ध शृंगार-वर्णन अधिकतम मात्रा में पाया जाता है, और हिन्दी साहित्य में भी उसका अंश अधिक है, तथापि यह निश्चित है कि मुसलमानों द्वारा परम्परागत स्थूल-प्रेम-वर्णन या शृंगार वर्णन में सजीवता लाई गई, क्योंकि भारतीय शृगार में प्रधान था, हृदयपक्ष का प्राधान्य मुसलमानी काव्य की विशेषता है।

आलम, शेख, रसलीन प्रभृति कलाकारों की शृंगार पूर्ण रचनाओं के पर्यवेक्षण से इसका प्रमाण मिल जायगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमकाव्यों के अलौकिक और लौकिक दोनों स्वरूपों के विकास में मुसलमानों ने विशेष योग दिया। किन्तु इसके अतिरिक्त प्रेमाख्यानान्तर्गत जो तीसरी शाखा, अर्थात् भक्ति मिश्रित प्रेमकाव्य की शाखा है। उसकी सर्जना में भी मुसलमानों का स्थान उल्लेख्य है। भक्ति-भावित प्रेम-काव्य की ऐसी रचना ससार की किसी अन्य भाषा मे (संस्कृत के अतिरिक्त) आज तक नहीं हुई। यह बात बेधड़क कही जा सकती है। वस्तुत साकारोपासना हिन्दुओं की अपनी पृथक् पद्धति है, जो विश्व के अन्य देशों में इस विकसित रूप में प्रस्फुटित ही नहीं हुई। अतएव मुसल्मान-साहित्य में भक्तिकाव्य का अभाव ही रहा। क्योंकि सिद्धान्तत सगुणोपासना की ओर उनका झुकाव नहीं था। किन्तु हमारे देश में आकर, यहाँ की भावनाओं द्वारा प्रभावित होने पर जिन मुसलमान कवियों ने सगुणोपासना का आनन्द न्यूनतम मात्रा में भी प्राप्त किया, उन्होंने भी उस आनन्द में विभोर होकर हिन्दुओं की भाँति ही भक्ति-काव्यों की सृष्टि की और इस प्रकार के काव्यों में मुसलमानों ने जो ललित, ललाम तथा रमणीय अमृत-स्रोत प्रवाहित किया उसमें आज तक जनता एक रस निमज्जित होती आ रही है। 'रसखान', 'ताज' प्रभृति कवियों की कविताओं को सुनकर कौन ऐसा हृदय है, जो रस के अजस्र स्रोत में लीन न हो जाय। आज तो हिन्दी भाषा-भाषी बच्चा-बच्चा 'या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को' त्यागने की भावना में रंगा दिखाई पड़ता है। रसखान के साथ स्वर में स्वर भर कर हिन्दी जानने वाला प्रत्येक गृहस्थी 'छछिया भर छाछ पै नाच' नाचने वाले कृष्ण के प्रेम में लीन हो जाता है।

वस्तुत' मुसलमान कवियों ने हिन्दी के प्रेमकाव्यों में जिस प्रकार योग देकर एकता की लहर लहराई उसमें हमारा देश तब-तक निमग्न रहा, जबतक राजनीतिक कारणों द्वारा अंग्रेजों ने पारस्परिक विद्वेष की सृष्टि नहीं कर दी। 'साहित्य' में 'एकता' कर देने की कैसी शक्ति है, इसका इससे बढकर प्रमाण नहीं हो सकता। विच्छेद राजनीति, समाज नीति, अर्थनीति आदि के बुद्धि व्यवसायात्मक विधानों से एक ता दूर नहीं हो सकता और यदि दूर भी हो तो समन्वय स्थायी नहीं होता। साहित्य की हृदय-संसिक्त सरिता ही विच्छेद दूर कर सकती है और स्थायी रूप से दूर कर सकती है।

—:५:—

सहायक-ग्रन्थ-सूची

हिन्दी—

१—हिन्दी-साहित्य का इतिहास (शुक्ल जी कृत)
२—हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
३—मिश्रबन्धु विनोद
४—मुसल्मानी राज्य का इतिहास
५—अरब और भारत का सम्बन्ध
६—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता
७—वाङ्मय-विमर्श
८—हिन्दी के मुसलमान कवि
९—ईरान के सूफी कवि
१०—जायसी ग्रन्थावली
११—चित्रावली
१२—कबीर ग्रन्थावली
१३—आख्यानक काव्य
१४—सूरदास
१५—दरिया सागर
१६—काव्य में रहस्यवाद
१७—मर्यादा पत्रिका (१९११ ई०)
१८—प्रेम-योग

अंग्रेजी—

१९—The Sufi Movement.
२०—Studies in Tasawuf.
२१—Hours with the Mystics
२२—The Mystics of Islam,
२३—The Idea of Personality is Sufism
२४—The Origin and Earliest Sects of Sufism.
B२५—The Development of Metaphysics in Persia.

२६—The Nirguna School of Hindi Poetry.

२७—Lectures on Sufi Movement.

२८—Muslim University Journal, July 1937.

२९—An Outline of History of Medicine in India

३०—Philosophy of Love

संस्कृत—

३१—श्रीमद्भागवद्गीता

३२—नारद भक्ति सूत्र